मानसिंह और मानकुतूहल

(सचित्र)

प्रस्तावना लेखक

श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी 'श्रीवर'

लेखक

श्री हरिहरनिवास द्विवेदी

ग्वालियर

प्रकाशक
विद्यामंदिर प्रकाशन
मुरार (ग्वालियर)

प्रथम संस्करण
सं० २०१० वि०
मूल्य ५)

मुद्रक
मॉडर्न प्रिंटिंग प्रेस
ग्वालियर

विषय-सूची

राग दर्पण

परिशिष्ट





हाराज मानसिंह तँवर का एक काल्पनिक चित्र जो गूजरी महल संग्रहालय में सुरक्षित है।

समर्पण

मृगनयनी

को

अनियारे दीरघ दृगनि
किती न तरुनि समान ।
वे नैना औरे कछू
जिहिं बस होत सुजान ।।

—बिहारी

प्रस्तावना

संगीत स्वस्थ मनुष्य के उल्लास की चरम मूर्त अभिव्यक्ति है। वह समाज की सामाजिक संगीत के द्वारा अपने उल्लास का प्रकाशन करता है जो स्वस्थ है और जीना जानता है। हमारे पूर्वजों ने वेद की ऋचाओं को गेय माना था और उनका जीवन इतना उल्लासमय था कि उन्होंने सामगान को इतना महत्व दिया था कि भगवान् श्री कृष्ण को गीता में कहना पड़ा कि "वेदोहंसामवेदोस्मि"। प्राचीन साहित्य में गीतों का उल्लेख जगह जगह मिलता है। श्रीमद्भागवत के वेणुगीत और गोपिका गीत बहुत प्रसिद्ध हैं, किन्तु वे जिस शैली में गाये जाते थे वह शैली आज भुला दी गई है। जयदेव के गीतगोविन्द में जो कोमलकांत पदावली है और उसमें जो गीतों के नाम और ताल दिये हैं उनसे बोध होता है कि श्रीमद्भागवत और गीत-गोविन्द के बीच के समय में संगीत ने अपना रूप कितना बदल लिया था। संस्कृत देश की साहित्यिक भाषा थी और शिक्षित समाज में संस्कृत गीत ही गायन के आधार थे। अपभ्रंश और प्राकृत में संगीत अवश्य था किन्तु यह जानने का इस समय ज्ञात साधन नहीं है कि वह संस्कृत प्रधान संगीत से कितना संबंधित था। कवि चंद का पृथ्वीराज रासों संभवतः गेय काव्य के रूप में लिखा गया था। किन्तु उस संगीत का रूप आज भुला दिया गया है। प्राचीन संगीत के रूप का आभास हमें उन गीतों में मिलता है जो परम्परा से एक विशेष शैली से मध्यदेश की कुछ विशेष जातियों में विवाह आदि अवसरों पर स्त्रियां गाती हैं। किन्तु स्त्री शिक्षा के प्रसार के साथ शिक्षित स्त्रियां उन्हें छोड रही हैं और दो एक दशक में यदि उन्हें ग्रामोफोन में रेकार्ड न कर लिया गया तो वे भी लुप्त हो जायेंगे।

वैदिक सामगान की परम्परा वेणुगीत आदि में होती हुई अयावरप से मुस्लिम आक्रमण तक बहती रही और उसमें जो विन्यास हुआ वह प्राकृतिक था। पश्चिम-उत्तर के पहाड़ों से उतर कर जब वैदिक संगीत सिन्धु की उर्वरा भूमि से गंगा जी की सजल और श्यामल भूमि में आया तो उसमें भौगोलिक तथा प्राकृतिक कारणों से परिवर्तन अवश्यम्भावी था। किन्तु यह परिवर्तन मूल धारा में हुआ। मुस्लिम आक्रमण के बाद राज्य के संरक्षण के अभाव में संस्कृत का ह्रास होने लगा और अराजकता तथा सतत युद्धों के कारण यह ह्रास इस सीमा तक पहुंच गया कि संस्कृत समझनेवालों की संख्या नगण्य रह गई। 'संस्कृत बोल' अविस्तर अभिजात वर्ग (जैसे युद्धों में रत राजाओं के लिये) अपरिचित हो गये थे। इन आक्रमणों से अपभ्रंश लिखित साहित्य का उत्तर-भारत में प्रायः लोप हो गया और जनता की भाषा ही जो उन उत्तर भारत में हिन्दी का आरम्भिक रूप थी, अभिजात्य वर्ग के लिये एकमात्र ज्ञान भाषा रह गई। इस प्रदेश में हिन्दी ने चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दियों में अपना साहित्यिक रूप स्थिर कर लिया और उसमें काव्य रचना भी होने लगी। इस काल में हिन्दी ने अपने रूप को स्थिर करने में कितनी कल्पनातीत उन्नति की वह इससे प्रकट है कि पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में जब सूर और तुलसी तथा उनके पूर्ववर्ती कवियों ने काव्य रचना की तब उन्हें एक प्रौढ़ और समर्थ भाषा तैयार मिली।

प्रत्येक भाषा की अपनी प्रकृति होती है। उसके उच्चारण और accent के कारण उन्हें छन्दोबद्ध करने के लिये छंद ऐसे होने चाहिये जिनमें वह प्रकृतरूप से समा सके। जिस प्रकार अंग्रेजी भाषा में रसिया या घनाक्षरी लिखना असंभव है उसी प्रकार भावा का सहारा लिए बिना ठेठ अंग्रेजी छंद में हिंदी कविता लिखना भी कठिन है। छंद भाषा की प्रकृति के अनुरूप होते हैं। यद्यपि हिंदी संस्कृत की ही संतान

है; फिर भी उसकी प्रकृति (उच्चारण और accent की दृष्टि से) संस्कृत से भिन्न है। इसलिये संस्कृत से भिन्न छंदों की रचना हिंदी में हुई। जब हम संस्कृत वृत्तों का सहारा लेते हैं तब सफल होने के लिये हमें प्रिय-प्रवास की तरह तत्सम शब्दों का प्रचुर प्रयोग करना पड़ता है, क्योंकि हिंदी के ठेठ शब्दों का उच्चारण और accent उन वृत्तों में ठीक तरह से नहीं जमता।

जिस प्रकार भाषा के परिवर्तन से छंद में परिवर्तन हो जाना अनिवार्य है उसी प्रकार शब्दों और छंदों की प्रकृति के भेद से संगीत में भी परिवर्तन हो जाता है क्योंकि साधारणतः संगीत का आधार 'बोल' ही होते हैं।

जब हिंदी भाषा का आधुनिक रूप स्थिर हुआ तो प्राचीन संगीत (जो संस्कृत पर आधारित था और जिसे मार्गी कहते थे) उसके लिये अनुरूप सक्षम नहीं रहा इसलिये यह अनिवार्य था कि संगीत में भी तदनुकूल परिवर्तन हो। अमीरखुसरो ने इसका कुछ प्रयत्न किया भी किन्तु उस प्रतिभाशाली विद्वान की पृष्ठभूमि में फारसी अरबी का प्रभाव था ; इस कार्य के लिये शुद्ध भारतीय प्रतिभा की आवश्यकता थी, और यह कार्य ग्वालियर के तोमर राजा मानसिंह ने किया।

राजा मानसिंह भारत के विलक्षण प्रतिभाशाली व्यक्तियों में थे। हम लोगों में इतिहास और अपने प्रतिभाशाली महान् व्यक्तियों के प्रति जो घोर उदासीनता है (जो कभी कभी उपेक्षा की सीमा तक पहुँच जाती है) उसी का यह प्रसाद है कि हम उनके विषय में नहीं के बराबर जानते हैं, और उनको साहित्य और कला के इतिहास में उस पद पर प्रतिष्ठित नहीं कर सके जिसके वे अधिकारी हैं। उनकी बहुमुखी प्रतिभा ने जिस स्थापत्यकला को प्रोत्साहन दिया वह मूर्तरूप में आज भी

'मानमन्दिर' और 'गूजरीमहल' के रूप में विद्यमान है और विशुद्ध हिन्दू-शैली के निवास भवनो के इने गिने उदाहरणों में है । किन्तु सगीत में उनका कार्य युग तरकारी था । ध्रुपद के निर्माण का श्रेय उन्हीं को दिया जाता है, सस्कृत के मार्गी सगीत से हिन्दी की प्रकृति के अनुरूप सगीत ढालकर उन्होंने जो सगीत की प्रतिमा निर्मित की वही हिन्दुस्तानी सगीत की आराध्यदेवी है और आज सारे भारत का सगीत उससे मुखर है। सगीतशास्त्र के पडित और मर्मी होने के सिवाय वे सगीतज्ञो के आश्रय-दाता और प्रोत्साहन कर्ता भी थे । उस सगीत-सूर्य के चारो ओर सगीत के अनेकानेक नक्षत्र जमा हो गए और सगीत का जो सौरमडल ग्वालियर में बना उसके सगीत प्रकाश से आज भी यह देश आलोकित है ।

इस नवीन सगीत का केन्द्र ग्वालियर था । यह आकस्मिक घटना न थी कि यहाँ तानसेन ने जन्म लिया । तानसेन का जन्म यहाँ तभी सम्भव हुआ जब राजा मान के प्रवर्तित सगीत से ग्वालियर की भूमि पीढ़ियो तक स्निग्ध और सिंचित रही । राजा मान सगीत में युग प्रवर्तन करने तथा सगीत की नई परम्परा चलाकर एव सगीतज्ञो को प्रोत्साहन देकर ही सन्तुष्ट न हो गए, किन्तु उन्होंने अपने प्राचीन नवीन सगीत के विषय में एक पुस्तक भी लिखी जिसका नाम 'मानकुतूहल' था और जिसमें इस सगीतशास्त्र का विवेचन था । यह हमारे लिये अत्यन्त खेद और दुर्भाग्य की बात है कि वह पुस्तक अब अलभ्य है । यदि वह मिलती तो तत्कालीन भाषा के नमूने के साथ ही हमें इस युगप्रवर्तक सगीतशास्त्री की मौलिक रचना भी मिलती और उसी के शब्दों में इस तत्कालीन सगीत की मान्यताएँ भी समझ पाते । किन्तु हम इस सौभाग्य के अधिकारी नहीं है । सतोष इतना ही है कि औरगजेब के एक अधिकारी ने मानकुतूहल के आधार पर जो एक पुस्तक फारसी में लिखी थी, और जिसमें मानकुतूहल की अधिकाश बातें आ गई है, श्री हरिहरनिवास द्विवेदी के उद्योग और लगन से हिन्दी भाषियो के लिये सुलभ हो गई है ।

यह पुस्तक इतिहास, साहित्य और संगीत तीनों की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। मुझे विश्वास है कि इसको पढ़कर हमें प्राचीन संगीत के विषय में बहुत सी भूली हुई बातें मालूम होंगी। हमारा ज्ञान बढ़ेगा और हम अपने संगीत के शुद्धरूप को समझने में समर्थ होंगे। आज इसकी बहुत आवश्यकता है क्योंकि पाश्चात्य संगीत से प्रभावित सिनेमा का वर्णसंकर-संगीत (जो हमारी भाषा और संस्कृति की प्रकृति पर आधारित नहीं है) हमारी सुरुचि पर उसी प्रकार आक्रमण कर रहा है जिस प्रकार हूणों के बर्बर समूहों ने रोम साम्राज्य की सभ्यता पर आक्रमण करके उसे नष्ट भ्रष्ट कर दिया था।

ग्वालियर आज भी संगीत का केन्द्र है किन्तु यह अपने स्रोत से कितना भिन्न है ? जहाँ ध्रुपद का आरम्भ हुआ, वहाँ आज ध्रुपद का जानकर ढूँढ़े नहीं मिलता। श्रेष्ठ वाणीकार के विषय में मानकुतूहलकार ने लिखा है :—

"अतः श्रेष्ठ गायक तथा गीत रचयिता को व्याकरण का अच्छा ज्ञान होना चाहिए तथा शब्द ज्ञान में प्रवीण होना चाहिए, पिंगल और अलंकार का भी अच्छा ज्ञान अनिवार्य है तथा उसे रस और भाव का भी अच्छा ज्ञान होना चाहिए। देशाचार और लोकाचार का भी ज्ञान होना आवश्यक है, तथा अपनी कला में प्रवीण होना चाहिए। उसकी प्रवृति कलानुवर्ती तथा समय से सामंजस्य स्थापित करने वाली होनी चाहिए तथा उसे कुशाग्रबुद्धि होना चाहिए। दूसरों को लाभ पहुँचाना उसका स्वभाव होना अनिवार्य है क्योंकि यह उसकी प्रतिष्ठा और प्रभुता का हेतु होता है। शास्त्रार्थ करने में उसकी क्षमता होना आवश्यक है जिससे लोग उसकी धाक मानें। गीत का रचयिता होना तथा गायन की ओर हार्दिक रुचि होना भी गायनाचार्यों को अभीष्ट है उसके गीत के विषय विचित्र

एव अनूठे होने चाहिए तथा उसे प्रबन्ध का ज्ञाता भी होना चाहिए। उसे प्राचीन रचनाएँ कण्ठस्थ होनी चाहिए। सगीत, नृत्य तथा वाद्य में भी उसकी पैठ होना अनिवार्य है।"

इन लक्षणो से आधुनिक कलाकारो का मूल्यांकन कीजिए। आज भी कलावत है और अच्छे कलावत भी है जो गायन में समा बाँध देते है, किन्तु आज आचार्य कितने है? इसका कारण यही है कि सगीतशास्त्र के अध्ययन की ओर ध्यान न देकर, तथा यह समझकर कि गायक के लिए काव्य, साहित्य आदि का ज्ञान बेकार है, केवल गायन पर जोर दिया जाता है, जो शब्द वे गाते है उनके ठीक ठीक अर्थ समझना तो दूर की बात है बहुत से उनका शुद्ध उच्चारण भी नहीं करते।

'मानसिंह और मानकुतहल' पुस्तक का प्रकाशन, मेरी सम्मति में, एक साहित्यिक घटना है। इसके लिए श्री हरिहरनिवास द्विवेदी हिन्दी ससार और सगीत तथा इतिहास प्रेमियो के धन्यवाद के पात्र है। मेरा विश्वास है कि इस पुस्तक से लोगो को सगीत के शास्त्रीय अध्ययन और प्राचीन साहित्य की खोज की प्रेरणा मिलेगी। अन्त में मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि यह पुस्तक इस देश के निवासियो को 'देशों की मणि' 'सुदेश' के युगप्रवर्तक कलाकार राजा मान तँवर की प्रतिभा का परिचय कराकर उनका उचित मूल्यांकन करावे और हमें यह समझने में समर्थ करें कि हमारा सास्कृतिक जीवन उनका कृतज्ञ है।

श्रीनारायण चतुर्वेदी

भूमिका

लगभग ग्यारह बारह वर्ष पूर्व काशी के प्रसिद्ध विद्वान श्री चंद्रबली पांडे ने यह सूचना दी कि ग्वालियर के तँवर महाराजा मानसिंह ने 'मानकुतूहल' नामक ग्रन्थ की रचना की थी, उस ग्रन्थ में उस समय की ग्वालियरी हिन्दी का रूप मिलेगा, अतएव मुझे उसकी खोज करना चाहिये।

काम करने योग्य ज्ञात हुआ। 'मध्य युगीन चरित्र कोष' में यह उल्लेख मिला कि इस ग्रन्थ की एक प्रति रामपुर के राज्य पुस्तकालय में है। भूतपूर्व ग्वालियर राज्य के विद्या-प्रेमी सरदार राजराजेन्द्र मालोजीराव नृसिंहराव शितोले ने मेरे आग्रह पर जनवरी सन् १९४५ में तत्कालीन रामपुर राज्य के दीवान सैयद बी० एल० जैदी को इस सम्बन्ध में पत्र लिखा। जैदी साहब ने मानकुतूहल की प्रतिलिपि कराकर भेजनेका वचन दिया।

बड़ी उत्सुकता से मैं उसकी बाट देखता रहा। अचानक एक दिन सरदार शितोले ने मुझे एक फारसी पुस्तक की पांडुलिपि सँभला दी और बतलाया कि जैदी साहब ने यह प्रतिलिपि कराकर भेजी है। यद्यपि मूल मानकुतूहल प्राप्त न हो सकने से निराशा हुई। तथापि जो कुछ प्राप्त हुआ था वह अनेक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण था। मुगल सम्राट आलमगीर औरंगजेब काश्मीर के के सूबेदार फकीरुल्ला द्वारा हिजरी सन् १०७३ में किए गये मानकुतूहल के फारसी अनुवाद की वह प्रतिलिपि थी। भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य के विकास का मूल स्रोत ग्वालियरी हिन्दी के अध्ययन का साधन तो न मिल

सका, परन्तु ग्वालियर की श्रेष्ठता स्थापत्य, साहित्य एवं संगीत के क्षेत्रों में स्थापित करने का प्रमाण अवश्य प्राप्त हो गया।

उस समय मैं "ग्वालियर राज्य के अभिलेख" "ग्वालियर की प्राचीन मूर्तिकला, आदि पुस्तकों को पूर्ण करने में लगा हुआ था। मानकुतूहल के रचयिता महाराज मानसिंह से मेरा परिचय भी नया ही था। ग्वालियर के तँवरों के मूल-पुरुष वीरसिंहदेव से लेकर कीर्तिसिंह तक के उल्लेख अभिलेखों में प्रचुर मात्रा में मुझे मिले, परन्तु महाराज मानसिंह तँवर की यशोगाथा मानमंदिर के रूप में तथा कुछ किंवदंतियों के रूप में ही सामने आयी। इतिहास का अध्ययन उनकी गाथा को अस्पष्ट रूप में सामने लाता था। तँवरों, गूजरों एवं अन्य स्थानीय घरानों में मानसिंह का नाम आदर और श्रद्धा के रूप में लिया जाता सुनाई दिया। अतएव फारसी के इस अनुवाद ने मेरी जिज्ञासा को बढ़ा दिया और ग्वालियर के इस अमर-कीर्ति पुरुष के विषय में लिखने का विचार उत्पन्न हुआ।

सबसे बड़ी अड़चन था मेरा फारसी का अज्ञान। ग्वालियर राज्य में जब मैंने वकालत प्रारम्भ की तब राजनियमों में अरबी-फारसी शब्द बहुल भाषा प्रयुक्त होती थी। मुझे उसे शुद्ध हिन्दी रूप देने का अवसर मिल चुका था। हिन्दी में राजनियम लिखने के लिये तत्कालीन कानून को समझना आवश्यक था और मुझे फारसी के दरवाजे में झांकना पड़ा। इस विज्ञता के ज्ञान के सहारे तो इस फारसी अनुवाद का हिन्दी अनुवाद संभव नहीं था। अतएव मैंने अपने नगर के फारसी के विद्वान श्रीकृष्णस्वरूप भटनागर से सहायता ली। बाल्यकाल के मेरे इतिहास के अध्यापक इन श्री भटनागर ने बड़ी तत्परता से हिन्दी अनुवाद किया। उसी समय मुरार में इस्लाम और फारसी के अभिमानी श्रीअहसानमलीखा कंटूनमेंट मजिस्ट्रेट बनकर आए। उनके साथ बैठ-

कर यह अनुवाद मैंने दुहराना प्रारम्भ किया। काम आधा ही हुआ था कि देश का विभाजन हुआ और एहसानअली साहब एकाएक पाकिस्तान चले गये। बात जहाँ की तहाँ रह गई। एक बड़े बस्ते में यह अनुवाद और उसके सम्बन्ध के कागद पत्तर बँध गये।

परन्तु इसके पूर्व मानकुतूहल के सम्बन्ध में मैंने एक दो लेख लिखे थे। इनमें से एक लेख 'प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ' में निकला। वह काशी के श्रीरायकृष्णदास की दृष्टि में पड़ा और कालान्तर में राय साहब ने इस अनुवाद को प्रकाशित करने का आग्रह किया। राजनीति और पत्रकारिता की दुरूह गलियों में जीवन फँस गया उनके विषम थपेड़ों से एक बार जब थकता हुआ दिखाई दिया और दिखने यह लगा कि संभवतः महायात्रा का समय आ गया, तब एक ही विचार आया कि अधूरी पुस्तकें पूरी कर डाली जायँ। अतः मई सन् १६५१ में मानकुतूहल सम्बन्धी सामग्री खोजकर उसे पूरा कर लिया और प्रेस में दे दिया।

इसी बीच आम चुनाव आ गए। राजनीत ने चुम्बक की तरह फिर खींचा और जीवन फिर एक बारगी अत्यधिक व्यस्तता में फँस गया। पुस्तक के मुद्रण की गति शिथिल हो गई। चुनाव से पीछा छूटा तब फिर अवकाश मिला और उसे पूरा कराने का प्रयास किया फिर भी इतना लम्बा अवकाश क्यों लगा उस दुखद प्रसंग को मैं न लिखना ही उचित समझता हूँ।

मानकुतूहल के अनुवाद रागदर्पण का यह अनुवाद जैसा चाहिये वैसा नहीं हो सका। कारण ऊपर लिखे हैं। प्रारम्भ में तँवर वंश पर विस्तार से प्रकाश डालने का प्रयास किया है। तंवरों के स काल का इतिहास वास्तव में कुछ अधिक विस्तार से लिखा जाना चाहिये। परन्तु मैं तो उसके लिये ठहरने का धैर्य खो चुका हूँ। जो कर सका सो सामने है, जो नहीं कर सका उसे करने का प्रयत्न करूंगा, अन्यथा काल अनन्त है, कोई और करेगा।

मानकुतूहल का अनुवाद 'रागदर्पण' इतिहास की सामग्री भी देता है। मूल पुस्तक के पदों को छोड़कर संगीत-शास्त्र की समग्र सामग्री इसमें प्रस्तुत की ही गई है। अतएव यद्यपि ग्वालियरी हिंदी के गौरव की स्थापना तो मैं नहीं कर सका, परन्तु ग्वालियर के गौरव को अवश्य सामने ला सका हूँ और इसी का मुझे संतोष है। अपने प्रदेश और मातृ भाषा की अर्चना में अर्पित यह तुच्छ अंजलि भी इसीलिये सार्थक ही होगी, क्योंकि मुझे स्वयं इससे यश की इच्छा नहीं जितनी अपने आराध्य की वंदना की। शौर्य और कला का पोषक ग्वालियर का मान, भारत का शीराज और ग्वालियरी हिंदी यदि इस पुस्तक द्वारा विद्वानों को आकर्षित कर सके तब मैं अपने विशृंखल जीवन के वे क्षण सफल समझूंगा जो इन पृष्ठों को लिखने में व्यय किये गए।

मुगल पूर्व तथा हर्षवर्धन के पश्चात् के भारत में कलाओं का जो विकास हुआ वह अत्यंत महत्वपूर्ण था। संगीत और स्थापत्य ने उस काल में विशेष उन्नति की। मुस्लिम सुल्तानों ने भी संगीत के विकास में विशेष योग दिया। चितौड़, जौनपुर, माडू और ग्वालियर इसके केन्द्र बने। परन्तु इनका वास्तविक विकास ग्वालियर में हुआ। ग्वालियर में उस समय जिस भाषा का परिमार्जन हुआ उसे देश ने टकसाली माना। उसी को आधार बनाकर आगे ब्रज-साहित्य का निर्माण हुआ। ग्वालियर का संगीत आगे चलकर भारतीय संगीत के उन्मेष का आधार बना। यहां के कुशल कारीगरों ने जिस स्थापत्य और तदनुगामिनी मूर्तिकला को पोषित किया वही आगे चलकर मुगल कालीन कारीगरों की मार्ग दर्शक बनी। चित्रकला के क्षेत्र में भी इस काल में ग्वालियर की बहुत बड़ी देन रागमाला चित्रों के रूप में रही है। रागों, उनकी पत्नी रागनियों तथा उनके पुत्रों की कल्पना इस समय तक पूर्ण रूप से ग्वालियर में विकसित हो

चुकी थी। रागमाला चित्रों में संगीत और चित्रकला के उच्च कल्पनामय सम्मिश्रण को देखकर यही कहा जा सकता है कि रागमाला चित्रों का प्रारंभ इस काल में ग्वालियर में ही हुआ, यहीं हो सकता था।

ग्वालियर के इस काल के सांस्कृतिक विकास का भारतीय इतिहास में विशेष महत्व है। मुगलकालीन भारतीय सांस्कृतिक विकास के लिये एक दृढ़ और सुपुष्ट भारतीय परपरा इनके द्वारा प्रदान की गई। इसी ग्वालियरी साहित्य और कला को मुगल काल में प्रगति मिली। यदि तंवरों ने ग्वालियर में संगीत चित्र और स्थापत्य आदि कलाओं को अत्यंत विकसित रूप प्रस्तुत न किया होता तब मुगल दरबार में इन कलाओं का विकास इस सुपुष्ट पृष्ठ भूमि के अभाव में अभारतीय रूप में होता। यह आश्चर्य है कि इस महत्त्व पूर्ण काल के सांस्कृतिक विकास का अध्ययन अभी सुचारु रूप से नहीं हुआ है। स्वतंत्र भारत के विद्वान इस ओर दृष्टिपात करेगें ऐसा बिश्वास है।

तंवरों के इतिहास का जो अध्ययन इस पुस्तक में है वह प्रारंभिक ही है। यह पूर्ण हो सके इसके लिये किसी सुप्रतिष्ठित सांस्कृतिक संस्था को यह कार्य हाथ में लेना पड़ेगा। इस काल का साहित्य प्राप्त हो सकता है, यदि उसके लिये निरंतर प्रयास किया जाय, ऐसा मेरा विश्वास है।

पुस्तक जब पूर्ण छप चुकी तब मुझे महाकवि केशवदास और गोविन्ददास चतुर्वेदी के मानसिंह एवं ग्वालियर विषयक उल्लेख पढ़ने को मिले, अतएव अन्त में परिशिष्ट के रूप में एक अध्याय और जोड़ दिया है। मुझे अब यह विश्वास हो चला है कि ईसवी पन्द्रहवीं शताब्दी में भारतीय संस्कृति के एक महान केन्द्र के रूप में ग्वालियर का सम्यक रूप से निकट भविष्य में ही अध्ययन संभव हो सकेगा।

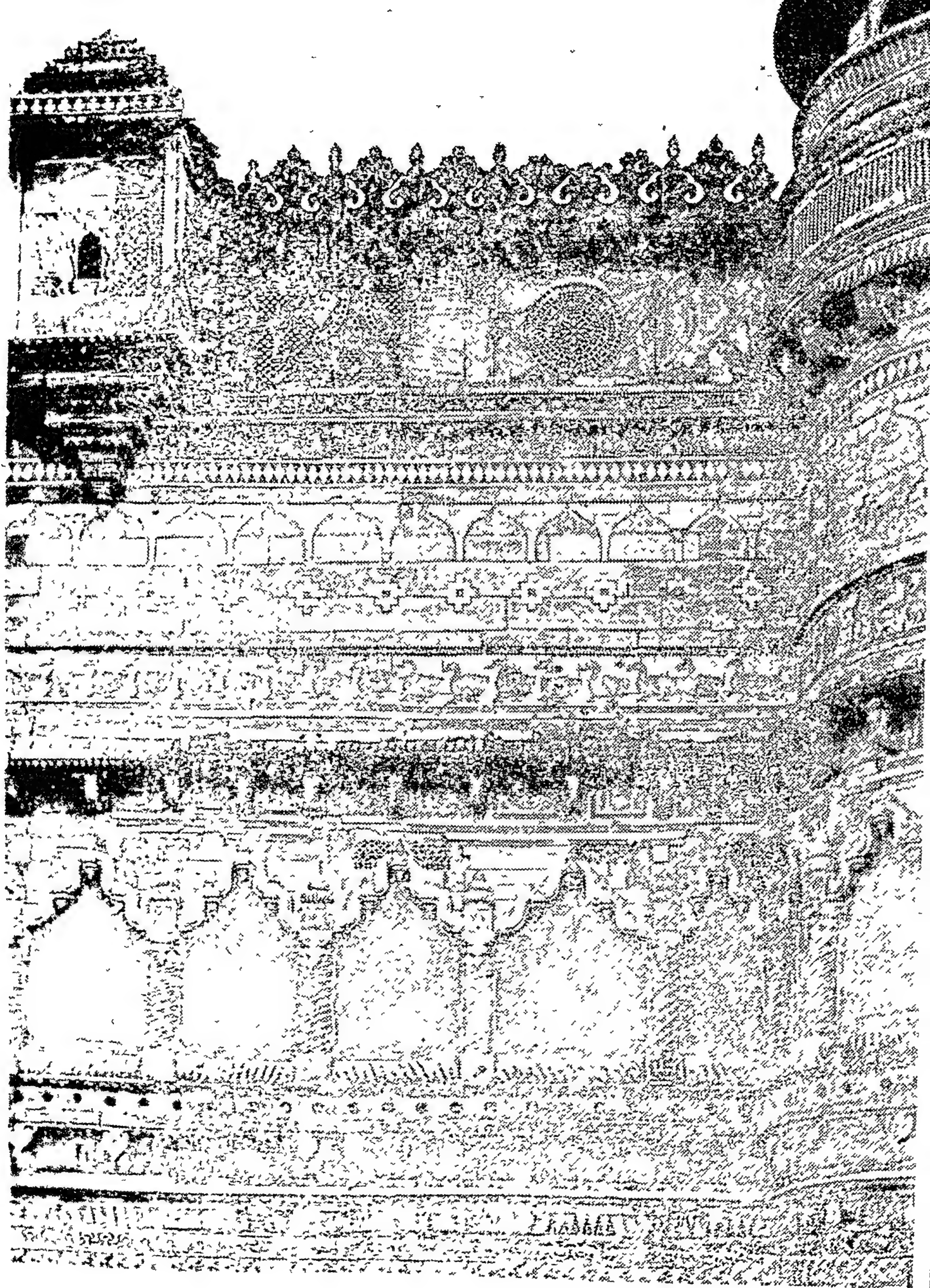
१५ वी शताब्दी में मथुरा के प्रकाण्ड पंडित श्री विजयराम चतुर्वेदी ने महाराज मानसिंह तवर और ग्वालियर को उपकृत किया था और आज बीसवीं शताब्दी में विजय राज चतुर्वेदी के ग्यारहवें वंशधर श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी "श्रीवर" की सहायता से महाराज मानसिंह की कीर्ति कौमुदी का उद्धार हो सका है, उसके लिये मैं उनका आभारी हूँ और स्वर्गीय विजयराम, खड्गमणि तथा गोविन्ददास भी उन्हें आशीर्वाद देंगे तथा महाराज मानसिंह की आत्मा भी सन्तुष्ट होगी। उनसे अधिक अन्य कोई विद्वान इस पुस्तक का प्रस्तावना लिखने का अधिकारी नहीं हो सकता था और यह उनकी कृपा है कि मेरा आग्रह मानकर 'श्रीवर' ने इसकी भूमिका लिखकर इसकी श्री वृद्धि की।

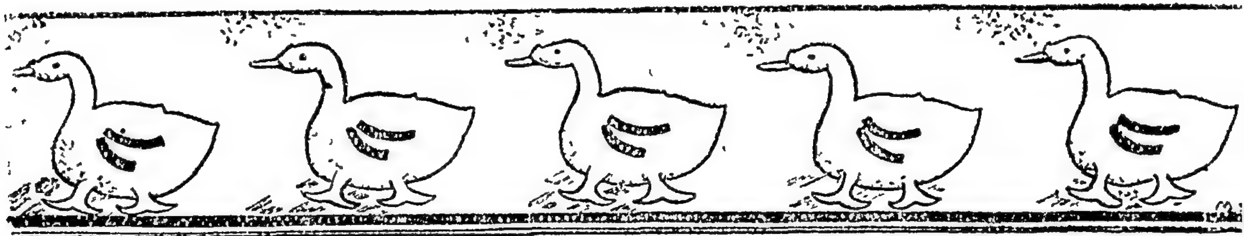
इस पुस्तक के प्रणयन में मुझे पहले मेरे शिष्य और अब मेरे मित्र श्री श्रीकृष्णवार्ष्णेय एम० ए०, साहित्यरत्न तथा श्री मन्नूलाल खंडेलवाल एम० ए० एल० एल० बी० साहित्यरत्न ने विशेष सहयोग दिया है। उनका मैं आभारी हूँ। सरदार मालोजीराव नृसिंहराव शितोले की सक्रिय सहायता के बिना तो यह प्रयास होता ही नहीं और जनाब जदी साहब का भी उतना ही उपकार है। मैं इन सहायकों का कृतज्ञ हूँ। इस पुस्तक के चित्र मध्यभारत पुरातत्व विभाग से प्राप्त हुए हैं तथा रेखाचित्र मैंने मानमंदिर के अलंकरणों पर से बनवाए हैं। जिन कलाकार ने ५ वर्ष पूर्व ये बनाए थे उनका नाम मैं भूल गया।

विद्यामंदिर, मुरार
२० फरवरी १९५४

हरिहरनिवास द्विवेदी

मानसिंह और मानकुतूहल





ग्वालियर का तँवर वंश

हिंदू साम्राज्यों के अन्त और मुस्लिम साम्राज्य के विकास का इतिहास बहुत बड़े बड़े ग्रंथों का विषय बन चुका है और उसी समय दिल्ली में तँवरों की जो पराक्रम पूर्ण गाथा रही है, वह भी अत्यधिक विश्रुत है। यहाँ तो हमारा संबंध केवल उन तँवर राजाओं के इतिहास से है जिन्होंने लगभग एक शताब्दी तक ग्वालियर में शासन किया। उस काल में देश के विभिन्न भागों में छोटे छोटे अनेक राज्य स्थापित हुए जो मुस्लिम विजय वाहिनियों से टकराकर चकनाचूर हो गए। स्वतंत्रता की ये छोटी छोटी वह्नियाँ जलीं और बुझ गईं। इनमें से कुछ ऐसे वंश और नरेश भी हो चुके हैं जो केवल

राजनीतिक सत्ता एवं धन संचय में ही लिप्त न रहकर साहित्य और कलाओं के आश्रयदाता बने और ऐसी स्मृतियाँ छोड़ गए हैं जो काल की लम्बी अवधि पारकर उनकी स्मृति को स्थायी रखेंगी। वास्तव में साहित्य और कला की साधना द्वारा मानव अपने यश शरीर को चिरस्थायी कर सकता है। विश्व में प्रत्येक वस्तु विनाशशील तथा परिवर्तनशील है। पिछली बातें मनुष्य भूल जाना चाहता है, वह स्मरण रखता है वर्तमान पीढ़ी को ज्ञान, आनन्द तथा प्रोत्साहन देने वाले विचारों के संग्रह को अथवा उसकी रुचि को परिष्कृत करने वाली कला-कृतियों को।

ग्वालियर के तँवर वंश का इतिहास हमारे लिए इस कारण मनन की वस्तु नहीं कि वह बहुत बड़े राजवंश की राजनीतिक कथा प्रस्तुत करता है अथवा कुछ लम्बे समय तक उसने राज्य किया, परन्तु इस राजवंश के अनेक नरेशों ने बाहुबल और राज्यबल के साथ साथ ऐसा विशाल हृदय भी पाया था जिसके कारण वे साहित्य, संगीत, स्थापत्य आदि के आश्रयदाता और पोषक बने।

प्रभातकालीन तारागणों की भाँति मध्यकाल में भारतीय राजवंश मुस्लिम सौभाग्य-सूर्य की किरणों के प्रवाह में लीन होने लगे। देश के विभिन्न भागों में अनेक छोटे छोटे राज्य स्थापित हो गए। देश की राजनीतिक स्वतन्त्रता कायम रखने के सामूहिक प्रयास असफल हो जाने के पश्चात इन छोटे छोटे राज्यों ने विजातीय प्रभुत्व के विरुद्ध स्फुट मोर्चे जारी रखे। आपसी विरोध की भावना एवं समान उद्देश्य के भान का अभाव न होता तो यह प्रयास कारगर हो सकते थे। फिर भी इनका अपना स्थान है, अपना

महत्त्व है। अस्तु ।

एक बार दिल्ली जो तँवरों के हाथ से निकली तो फिर प्रयास करने पर भी कभी उनकी न हो सकी। यद्यपि चारण-भाट कहते ही रहे :—

"फिर फिर दिल्ली तौरों की। तौर गए तब औरों की।।"

परन्तु दिल्ली औरों की हो गई और तौरों को आश्रय मिला ग्वालियर गढ़ और उसके आस-पास के प्रदेश में, जो आज भी तँवरघार नाम से प्रसिद्ध है ।

वीरसिंह देव तँवर

चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मुस्लिम सत्ता डांवाडोल हो गई और उस समय अनेक राजपूत वंशों को अपने स्वतंत्र राज्य स्थापित करने का अवसर मिला। तुगलकों का केन्द्रीय शासन नितान्त शिथिल और अस्तव्यस्त हो गया था। उसी समय मध्य एशिया के प्रसिद्ध चुगताई विजेता तैमूर के प्रबल आक्रमण से दिल्ली के तुग़लक वंश का डगमगाता महल ध्वस्त हो गया।

इसी समय ग्वालियर किले के सूबेदार की सेना में तँवर वंश के दो भाई परमाल देव तथा वीरसिंह देव उन्नति कर रहे थे। ये दोनों बंधु डंडरोली (डंडोत घार) के ग्राम ईसामणिमाला के जमीदार थे। वे अपने पराक्रम तथा चातुर्य से अत्यधिक शक्ति-संचय कर चुके थे। अवसर पाकर वीरसिंह देव ने ग्वालियर गढ़ पर अधिकार कर लिया। यह घटना दिल्ली पर तैमूर के आक्रमण के समय (सन् १३७५ ई०) की है। वीरसिंह देव ने ग्वालियर

गढ में कुछ निर्माण भी कराया। अपने पुत्र लक्ष्मण देव के नाम पर लक्ष्मण पौर का निर्माण इनके समय में ही हुआ था।

उद्धरण देव तथा विक्रम देव तँवर

वीरसिंह के पश्चात उद्धरण देव (सन् १४०० ई०) ने शासन किया, परन्तु उनके काल की किसी घटना का उल्लेख नहीं मिलता। वीरमदेव (विक्रम देव) के राज्यकाल में मुस्लिम सत्ता से ग्वालियर के तँवरों का विषम संघर्ष प्रारम्भ हो गया। दिसम्बर सन् १४०२ ई० (जमादिल अव्वल, ८०५ हिजरी) में मुहम्मद शाह के सेनापति इकबाल खा ने ग्वालियर गढ पर आक्रमण कर दिया। विक्रमदेव के पराक्रम तथा ग्वालियर गढ की अजेयता ने इकबाल को अपने काय मे सफल न होने दिया और आस-पास की जनता की लूट पाट कर के ही वह वापिस लौट गया।

एक बार पुन इकबालखा ने प्रयास किया। इस बार विक्रमदेव ने अन्य राजपूत सरदारो के साथ शत्रु से लोहा लेने की तैयारी की। धौलपुर के किले पर विक्रमदेव और इकबाल का मुकाबला हुआ। विक्रमदेव को धौलपुर छोडना पडा और वे ग्वालियर लौट आए। परन्तु इस बार इकबाल आगे बढने का साहस न कर सका। सन् १४०४ ई० में पुन इकबाल खा और विक्रमदेव की इटावा में टक्कर हुई। राजपूतो को इस बार हार मानना पडी। तँवर राज्य और दिल्ली राज्य में संधि हुई और राजपूतो ने 'खिराज' दे ना स्वीकार कर लिया।

विक्रमदेव इस हार को न भूले और उन्होंने 'खिराज' देना बंद कर दिया। सन् १४१६ ई० में खिजरखां ने मलिक ताजउल मुल्क को ग्वालियर गढ़ पर चढ़ाई करने को भेजा और वह विक्रमदेव से खिराज वसूल करने में सफल हुआ।

महाराज डूगरेन्द्रसिंह तँवर

सन् १४२४ ई० में तँवर वंश के सिंहासन पर महाराज डूंगरेन्द्रसिंह आसीन हुए। तीस वर्ष के लम्बे राज्यकाल में महाराज का समय उत्तर में दिल्ली और दक्षिण में मांडू के सुल्तानों से लोहा लेने में बीता और अनेक वार विजयश्री इनके हाथ रही। इनके समय में ग्वालियर के तँवर वंश का शासन अत्यधिक विकसित हुआ और उसे वास्तविक राज्य का रूप प्राप्त हुआ।

इस समय ग्वालियर, चन्देरी आदि अनेक स्थलों पर राजपूत राज्य स्थापित हो गए थे और वे अपनी स्वतंत्र सत्ता को अक्षुण्ण रखने के लिए निरन्तर सचेष्ट थे। उत्तर में सैयद वंश, दक्षिण में मांडू के सुल्तान और पूर्व में जौनपुर के शर्की शाहों के वीच वीरता, कूटनीति और चातुर्य के कारण ही ये अपना राज्य कायम रख सके। इनमें एक के विरुद्ध दूसरों को सहायता देने की नीति इन राजपूत राजाओं को बहुधा अपनानी पड़ती थी।

फीरोजशाह तुगलक द्वारा मालवे के सूबेदार पद पर नियुक्त दिलावर खां गोरी धार में अपने आप को सन् १४०१ ई० में स्वतंत्र शासक घोषित

कर चुका था। सन् १४०५ ई० मे हुशगशाह गोरी सभवत अपने पिता को विष देकर मालवे का सुलतान बना और अपनी राजधानी धार से माडू ले गया। इस सुलतान ने ग्रास पास के देश में बहुत लूट-मार मचा रखी थी। महाराज डूगरेन्द्रसिंह ने राजपूतो की एक सेना सगठित कर हुशगशाह को परास्त किया और बहुत सा माल-खजाना लेकर ग्वालियर गढ पर लौट आए। इसी विजय में ही सभवत इनके हाथ प्रसिद्ध कोहिनूर हीरा लगा।

हुशगशाह ने दूसरे वर्ष ग्वालियर गढ पर आक्रमण कर दिया। तँवर महाराज ने इस बार जौनपुर के सुलतान मुबारक शाह से सहायता ली और हुसगशाह को हार मानकर ग्वालियर से सधि करना पडी। इस प्रकार राज्य के प्रारम्भकाल में ही महाराज डूगरेन्द्र सिंह ने ग्वालियर के तँवर राज्य को मालवा और जौनपुर के सुल्तानो के राज्यो के समकक्ष कर दिया। इनके समय में तँवर राज्य की सीमा सबसे अधिक थी और उसमें वर्तमान मुरैना, शिवपुरी एव गिर्द जिलो के अधिकाश भाग थे। देहली, जौनपुर एव मालवा के मुस्लिम राज्यो के बीच स्थित इस तँवर राज्य की सहायता की अपेक्षा यह तीनो राज्य करते थे और साथ ही उसे हडप जाने की चिन्ता में भी रहते थे।

लगभग सन् १४३५ ई० में माडू के प्रतापी सुल्तान मुहम्मद (प्रथम) खिलजी ने तँवरो पर आक्रमण किया, परन्तु उसे महाराज डूगरेन्द्रसिंह ने विफल प्रयास कर दिया। दिल्ली की ओर से भी आक्रमण होते ही रहे परन्तु तँवर राज्य अविचल रहा। सन् १४३८ ई० में डूगरेन्द्रसिंह ने मालवे के

सुल्तानों के अधीनस्थ नरवर गढ़ पर आक्रमण कर दिया और सुल्तानों की सेना को हराकर अपना अधिकार कर लिया। नरवरगढ़ में स्थित जयस्तंभ (जैत खंभ) आज भी इस विजय की साक्षी दे रहा है।

इन विजय अभियानों, कूटनीतिक दावपेचों और युद्धों के बीच महाराज डूगरेन्द्रसिंह का ध्यान विद्वानों, धार्मिक समारोहों और निर्माणों की ओर भी गया। ग्वालियर गढ़ पर मीठे पानी के कुएँ का निर्माण महाराज डूंगरेन्द्रसिंह ने कराया। इस कुएँ का पानी औषधि के रूप में प्रयुक्त होता था और बिना राजाज्ञा के उसका उपयोग नहीं किया जा सकता था। ग्वालियर गढ़ को अधिक दृढ़ करने के लिए महाराज डूँगरेन्द्रसिंह ने गणेश पौर नामक द्वार का निर्माण भी कराया।

महाराज डूगरेन्द्रसिंह के राज्यकाल में ही ग्वालियर गढ़ की चट्टानों में जैन प्रतिमाओं का निर्माण प्रारम्भ हुआ। सबसे पूर्व वि० सं० १४९७ (सन् १४४० ई०) के तीन शिला लेख* इस बात के सूचक हैं कि इनके आश्रय में अनेक जैन मतावलम्बियों ने उन विशाल जैन प्रतिमाओं का निर्माण प्रारम्भ करा दिया था जो आज ग्वालियर गढ़ को चारों ओर से घेरे हुए हैं। इन अभिलेखों में उल्लिखित जैनाचार्य देवसेन, यशकीर्ति, जयकीर्ति एवं अन्य भट्टारक राज दरबार में पूर्ण सामादृत होंगे इसमें संदेह नहीं। खेद यही है कि अभिलेखों द्वारा प्राप्त इस जानकारी की पूर्ति अभी तत्कालीन जैन

---

*तँवर शिलालेखों के विस्तृत वर्णन के लिए देखिये हमारी पुस्तक 'ग्वालियर के अभिलेख'।

साहित्य की खोज द्वारा नहीं हो सकी है। इतनी बात तो निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि महाराज डूगरेन्द्रसिंह जैन धर्म के प्रबल पोषक थे और उन्हीं के प्रोत्साहन से जैन धर्मानुयायियों ने ग्वालियर गढ को जैन मूर्तियों से अलङ्कृत करने का सकल्प किया होगा। महाराज डूगरेन्द्रसिंह के समय में हुई जैन सम्प्रदाय की उन्नति के इतिहास की खोज होना अभी शेष है और आवश्यक भी है।

कीर्तिसिंह तँवर

डूगरेन्द्रसिंह के पश्चात सन् १४५५ ई० में उनके पुत्र कीर्तिसिंह तँवर ग्वालियर गढ के अधिपति बने। कीर्तिसिंह अपने यशस्वी पिता के समान ही योद्धा और कला-प्रेमी थे। वे अपनी राज्य-सीमा को बढाते ही गए और दिल्ली, जौनपुर तथा मालवा के रोष और प्रेम भाजन बने रहे। सन् १४६५ में जौनपुर के हुसेनशाह शर्की ने ग्वालियर पर आक्रमण किया परन्तु वह महाराज कीर्तिसिंह से सधि करके सतुष्ट हो गया। यह सधि तँवर राज्य को बहुत अशुभ सिद्ध हुई। जब सन् १४७८ ई० में दिल्ली के अफगान बादशाह बेहलोल लोदी ने जौनपुर के हुसेनशाह शर्की पर आक्रमण किया तब इस सधि के अनुसार महाराज कीर्तिसिंह ने हुसेनशाह का पक्ष लिया। रावेर (नीमाड) के क्षेत्र में विजयश्री लोदियो के साथ रही और जौनपुर दिल्ली राज्य में आत्मसात कर लिया गया।

महाराज कीर्तिसिंह ने पराजित हुसेनशाह को आश्रय दिया और तँवर महाराज ने उसे अपनी सेना के साथ कालपी पहुँचा दिया। परिणाम

यह हुआ कि इस विजय से प्रबल हुआ लोदी राज्य तँवरों का कट्टर शत्रु वन गया।

बहलोल लोदी ने धौलपुर जीतकर दो लाख सेना ग्वालियर गढ़ पर आक्रमण करने के लिए भेजी। इस विशाल सैन्य-समुद्र के सामने महाराज कीर्तिसिंह की छोटी सेना टिक न सकी और उन्हें पराजय उठानी पड़ी। परन्तु उन्होंने धैर्य न छोड़ा। बहलोल लोदी की सेना के लौटने के बाद जब वह अन्य प्रदेशों में युद्धरत हुआ महाराज कीर्तिसिंह नें पुनः ग्वालियर गढ़ पर तँवरों का राज्य स्थापित कर दिया। यद्यपि तँवर राज्य का बहुत-सा अंश हाथ से निकल गया (जिनमें नरवर का किला भी था) फिर भी कुछ समय को दिल्ली की ओर से शान्ति मिली। सन् १४७९ ई० में महाराज कीर्तिसिंह देवलोकवासी हुए।

महाराज डूंगरेन्द्रसिंह के समान कीर्तिसिंह ने भी जैन सम्प्रदाय को आश्रय दिया। इनके राज्य काल में ग्वालियर गढ़ की जैन प्रतिमाओं का निर्माण पूर्ण हुआ। महाराज डूंगरेन्द्रसिंह और कीर्तिसिंह के शासनकाल में सन् १४४० ई० से १४७३ ई० तक ३३ वर्ष के समय में यह मूर्तियाँ बनी। इस विशाल गढ़ की प्रायः प्रत्येक चट्टान को खोदकर उत्कीर्णक ने अपने अपार धैर्य का परिचय दिया है। इन दो नरेशों के राज्य में जैन धर्म को प्रश्रय मिला और उनके द्वारा मूर्ति कला का जो विकास हुआ उसकी ये भावमयी प्रतिमाएँ प्रतीक हैं। ३३ वर्ष के थोड़े समय में ही कुरूप एवं वेडौल चट्टानें महानता, शान्ति एवं तपस्या की भाव-व्यंजना से मुखरित हो उठीं। ज्ञात ऐसा होता है कि मूर्तियों का प्रत्येक निर्माणकर्ता ऐसी प्रतिमा का निर्माण करना चाहता

थी जो उसकी श्रद्धा और भक्ति के अनुपात में ही विशाल हो, और उत्कीर्णक ने उस विशालता में सौंदर्य का पुट देकर कला की अपूर्व कृतियाँ खडी कर दी ।

इन जैन प्रतिमाओं के अतिरिक्त, अनुश्रुति यह है कि महाराज कीर्तिसिंह ने अनेक तालावों का भी निर्माण कराया । परन्तु प्रख्यात यह भी है कि यह तालाव महाराज मानसिंह के समय में पूर्ण हुए । सभव यह ज्ञात होता है कि महाराज कीर्तिसिंह ने ही पिछले समय में यह लोक हितकारी निर्माण प्रारभ किए जो क्रमश महाराज कल्याणसिंह के समय में बनते रहकर महाराज मानसिंह द्वारा पूर्ण हुए । तवरघार में अनेक तालाव तँवरों के बनवाए हुए हैं और सबसे प्रमुख ग्वालियर गढ के निकट का ही तालाव है जो अब मोती-झील के नाम से विख्यात ह ।

कल्याणसिंह अथवा कल्याणमल तँवर

कीर्तिसिंह के पश्चात सन् १४८१ ई० में तँवर गद्दी पर महाराज कल्याणसिंह आसीन हुए । ई० सन् १४८६ तक इनका राज्य रहा । इनके समय की कोई उल्लेखनीय राजनीतिक घटना ज्ञात नही है । सभवत इनका सात वर्ष का राज्य शान्ति पूवक बीता और वे तँवरों द्वारा निर्मित तालावों का निर्माण कराते रहे ।

परन्तु कल्याणमल के राज्य का महत्व तँवर कला के इतिहास में है । इनके बनाये हुए बादल महल में उस मनोरम स्थापत्य कला का पूर्व रूप है जिसके दर्शन मानसिंह के स्थापत्य में हुए ।

महाराज मानसिंह तँवर

ग्वालियर के तँवर वंश का वैभव, शौर्य, श्री, कलाप्रियता, बुद्धिमंत्ता और सहृदयता महाराज मानसिंह में अत्यंत विस्तृत रूप में परिलक्षित हुई। महाराज मानसिंह आज भी इतिहास, जनश्रुति एवं अनुश्रुतियों के विषय बने हुए है। उनके शौर्य, साहित्य, संगीत स्थापत्य आदि का प्रेम मुगल काल तक में प्रतिध्वनित हुआ।

महाराज मानसिंह सन् १४८६ ई० में ग्वालियर की गद्दी पर आसीन हुए। इसी बीच दिल्ली के बहलोल लोदी की मृत्यु हुई और सिकन्दर लोदी बादशाह बना।

महाराज मानसिह को समझते देर न लगी कि जौनपुर के सुल्तान का साथ देने के कारण लोदियों से जो वैमनस्य स्थापित हो गया है, उसे दूर करना ही बुद्धिमत्ता होगी। अतएव सन् १५०० ई० में महाराज मानसिंह ने अपने एक विशेष प्रतिनिधि निहालसिंह तँवर को उपहारों के साथ दिल्ली भेजा। परन्तु सिकन्दर लोदी को निहालसिंह प्रसन्न न कर सका, उलटे अप्रसन्न ही कर आया। एक बार पुनः संधि का प्रयास किया गया परन्तु वह व्यर्थ गया।

अब युद्ध के अतिरिक्त कोई मार्ग नही था। सिकन्दर लोदी ने ग्वालियर पर बहुत बड़ी सेना के साथ आक्रमण कर दिया। दिल्ली की सेना को मार भगाने के अनेक प्रयास असफल हुए। अन्त में एक युक्ति काम दे गई। सिकन्दर लोदी जब जौरा नामक ग्राम के निकट से जा रहा था, राजपूत सेना ने उस पर अचानक आक्रमण कर दिया। बहुत घमसान युद्ध के बाद लोदी

सेना में भगदड मच गई और सिकन्दर को परास्त होकर दिल्ली भागना पडा ।

इस पराजय ने दिल्ली सम्राट के हृदय को क्षोभ और क्रोध से भर दिया। १५१७ ई० में उसने आगरे के पास ग्वालियर पर आक्रमण करने के लिए बहुत बडी सेना एकत्रित कर ली। परन्तु आक्रमण करने के पूर्व ही उसकी मृत्यु हो गई और यह आसन्न सकट दूर हो गया।

लोदियो ने तँवरो के राज्य को पर्याप्त क्षति पहुँचाई । नरेन्द्रसिंह द्वारा जीता गया नरवर का किला तँवरो के हाथो से निकल ही गया था। सिकन्दर लोदी के समय में दिल्ली की ओर से सफदरखा नरवर का शासक था। ग्वालियर को दक्षिण की दिशा से अधिक सफलता पूर्वक घेरने के लिए सफदरखा ने पवाया पर सन १५१२ ई० में एक किले का निर्माण कराया और इस प्रकार दक्षिण में केवल ४० मील की दूरी पर लोदियो की एक छावनी तैयार हो गई।

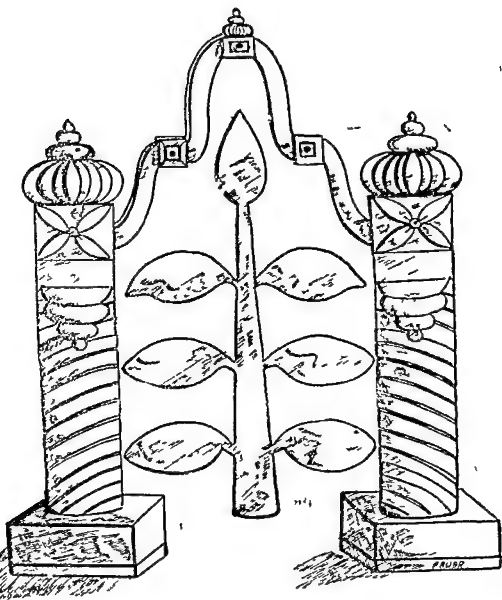
विक्रमादित्य तँवर

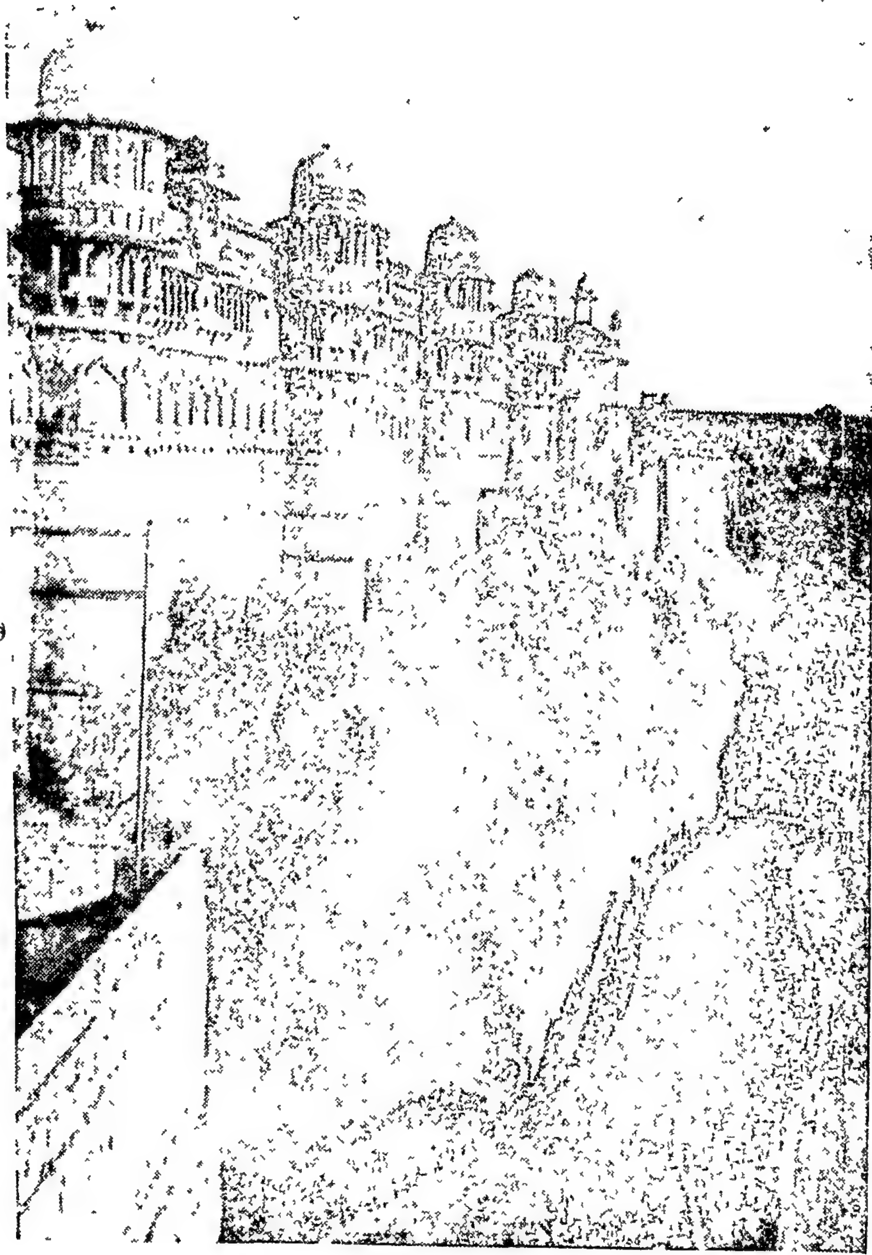
सिकन्दर के पश्चात इब्राहीम लोदी गद्दी पर बैठा। राज्य सभालते ही उसके हृदय में ग्वालियर गढ लेने की महत्त्वाकाक्षा जागृत हुई। उसे अपने पिता सिकन्दर और प्रपिता बहलोल की इस महत्त्वाकाक्षा के असफल होने की कथा ज्ञात थी, अत उसने अपनी सम्पूर्ण शक्ति से तैयारी की। लोदियो की सेना ने ग्वालियर गढ घेर लिया। जब गढ घिरा हुआ था, सन १५१६ ई० में महाराज मानसिंह की मृत्यु हो गई।

तलवारों की छाया में महा राज विक्रमादित्य तँवर गद्दी पर बैठे । आजम हुमायूँ के सेनापतित्त्व में लोदियों की बहुत बड़ी सेना ग्वालियर गढ़ घेरे हुए थी । राजपूत बहुत जी तोड़कर लड़े परन्तु संख्या की विषम असमानता पर वे विजय न पा सके । बादलगढ़ द्वार टूट गया । लक्ष्मण पौर द्वार पर फिर भीषण युद्ध हुआ । यहाँ लोदियों को बहुत बड़ा बलिदान करना पड़ा । इब्राहीम लोदी का अत्यंत विश्वस्त सरदार ताज निजाम धराशायी हुआ । आज भी उसकी कब्र ग्वालियर गढ़ के नीचे मौजूद है । परन्तु अफगान सेना की संख्या के आगे राजपूतों के शौर्य को झुकना पड़ा और विक्रमादित्य को आजम हुमायूं से संधि करना पड़ी। तॅवरों की राजलक्ष्मी विदा ले गई । विक्रमादित्य की वीरता से प्रसन्न होकर इब्राहीम लोदी ने उसे शमशाबाद की जागीर दे दी । एक शताब्दी से अधिक ग्वालियर गढ़ पर राज्य करने के पश्चात तॅवर नरेश जागीरदार मात्र बन गए और विक्रमादित्य को पानीपत के युद्ध में लोदियों की ओर से बाबर के विरुद्ध लड़ना पड़ा ।

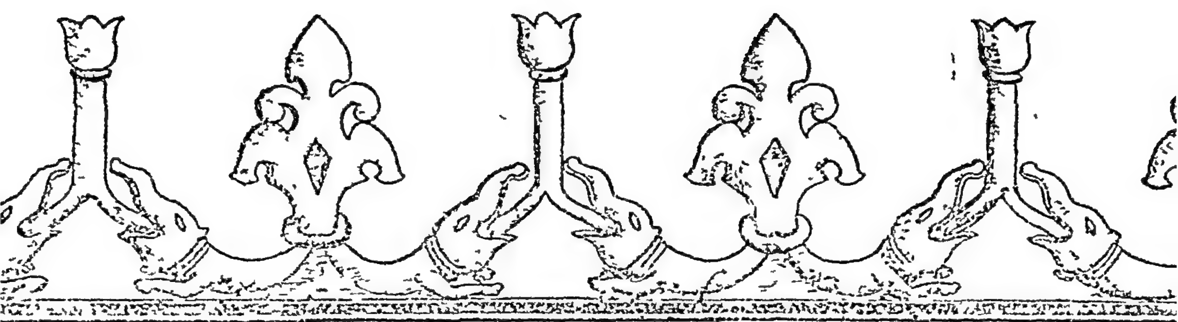
रामसिंह तँवर

परन्तु तॅवर वंश का एक और वीर अभी दूसरी ही साधना कर रहा था । जब विक्रमादित्य पानीपत के मैदान में लोदियों की सेना के साथ बाबर की विजय-वाहिनी के विरुद्ध युद्ध कर अपने विजेता के लिए प्राणों की वलि दे रहे थे तब तँवर वंश का एक दूसरा तेजस्वी राजकुमार रामसिंह ग्वालियर गढ़ पर तँवर पताका स्थापित करने के प्रयास में लगा हुआ था । सन् १५२६ मे रामसिह ने थोड़े से सैनिकों





ग्वालियर गढ़ के प्रत्येक चित्र मे मानमन्दिर अपनी शानदार स्थिति के कारण ध्यान अकर्षित करता है।



महाराज मानसिंह तँवर

अभी हमने तँवर वंश के इतिहास के क्रम में महाराज मानसिह तँबर का उल्लेख किया और उनकी सामरिक हलचलों का उल्लेख भी कर दिया है। उनके व्यक्तित्त्व एवं कला-प्रेम के विषय में हम उपलब्ध सामग्री के आधार पर यहाँ कुछ लिखने का प्रयास करेंगे।

यह स्वीकार करना पड़ेगा कि महाराज मानसिह के विषय में जो साहित्य अब तक उपलब्ध हो सका है उससे उनके व्यक्तित्त्व के विषय में विस्तृत जानकारी नहीं मिल सकी है। इतने पराक्रमी, वीर एवं कलाप्रेमी व्यक्ति के विषय में केवल किंवदंतियों एवं फरिश्ता आदि के दूसरे दृष्टिकोण

से किए गए उल्लेख ही मिलते हैं। मानकुतूहल के अनुवाद में फकीरुल्ला ने भी कुछ प्रशंसात्मक भाव प्रकट करके ही संतोष प्रकट कर लिया है।

परन्तु आज उनकी कुछ कृतियाँ विद्यमान हैं। स्थापत्य कला का रत्न 'मानमंदिर', मनोरम प्रेमकथा से अनुरंजित 'गूजरी महल', मोती झील के उध्वस्त चिह्न और फकीरुल्ला द्वारा मानकुतूहल का फारसी अनुवाद हमारे हृदय में एक कौतूहल उत्पन्न करते हैं और हम जिज्ञासा करते हैं कि कैसा था वह व्यक्तित्व जिसके हृदय और मस्तिष्क से इन महान् कल्पनाओं ने जन्म लिया? परन्तु आज हमारे पास यह जानने का कोई साधन नहीं कि महाराज मानसिंह कब जन्मे, उनका रूप कैसा था,* कैसा था उनका व्यक्तिगत स्वभाव? उनकी कृतियों की पार्श्वभूमि में हम उनका काल्पनिक चित्र बनाते हैं, मानमंदिर के प्रकोष्ठों में हम उनकी भव्य काया के विचरण के स्वप्न देखते हैं, 'गूजरीमहल' में उनके आगमन पर गूजरी रानी के प्रेमाभिभूत होने की कल्पना करते हैं, दरबारियों और सामन्तों के साथ उनके आखेट के अभियानों की कल्पना करते हैं, प्रजा के पानी और अधिक अन्न की पुकार के उत्तर में इन्हें किले के पास की पहाड़ियों पर खड़े

---

* इस पुस्तक में महाराज मानसिंह का जो चित्र दिया गया है, उसका फोटो हमें मध्यभारत पुरातत्त्व विभाग के 'गूजरी महल' में स्थित संग्रहालय से प्राप्त हुआ है। हमारा अनुमान यह है कि यह चित्र संभवत महाराज मानसिंह का ही बनाया गया है यद्यपि वह है काल्पनिक, क्योंकि यह उनका समकालीन नहीं है। उनका ओजस्वी मुखमंडल इस चित्र में बड़ी कुशलता से अंकित किया गया है।

होकर बड़े बड़े बांध और तालाबों के निर्माण की मंत्रणा करते हुए विचार जगत् में देखते हैं, गूजरी युवती से उनके प्रथम मिलन की कल्पना करते हैं, मृगमयनी के सामने उद्धत मृगराज के विनयावनत होने की कल्पना करते हैं, नवीन रागों और पदों की रचना में व्यस्त उनके मानस को अन्त:चक्षुओं से देखते हैं; हम कल्पना करते हैं मानमंदिर के प्रांगण में चारों दिशाओं से एकत्रित हुए गायनाचार्यो की परिषद का जिसमें मानकुतूहल के निर्माण का शुभारम्भ हुआ; हम उस महान क्षण की भी कल्पना करते है जब ग्वालियर गढ़ के नीचे विशाल अश्व पर आरूढ़ होकर मालवा के सुलतानों से छीने हुए कोहिनूर को मुकुट में धारण कर एक बार महाराज मानसिह ने गोपाद्रि को नीचे से ऊपर तक देखकर अपने मानस में उसके कुरूप भाग को मानमंदिर जैसे रत्न से सुशोभित कर उसे अमिट श्री और सौभाग्य से सुशोभित करने की कल्पना की होगी। परन्तु हमारे इस कल्पना-चित्र को इतिहास केवल मोटी मोटी रेखाओं का ही अवलम्बन देता है। महाराज मानसिंह तँवर यह भूल गए कि उनका चित्र आगे की पीढ़ियों तक सम्पूर्ण पहुँच सके इसके लिए उन्हें एक प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार को भी प्रश्रय देना था, पत्थर में प्राण फूंकने वाले कारीगरों के अतिरिक्त किसी महाकवि की प्रतिभा को भी प्रसन्न करना था, एक फरिश्ता या अबुलफजल भी उन्हें चाहिए था; दम्भी निहालसिंह उन्हें निहाल न कर सका, एक विनयावत लेखक उन्हें अमर कर देता। अस्तु।

हमारे पास अभी तक यह साधन भी नहीं है कि हम जान सकें कि महाराज डूगरेन्द्रसिंह एवं कीर्तिसिंह के राज्यकाल में समादृत जैन साधुओं एवं

भट्टारकों के प्रति महाराज मानसिंह का व्यवहार कैसा रहा ? यह सत्य है कि मानसिंह के समय का कोई मूर्तिलेख हमें प्राप्त नहीं हुआ । संगीत, मृगया, मृगनयनी और युद्ध में निरन्तर रत रहने वाले महाराज मानसिंह धार्मिक विवेचन के लिए अधिक समय दे सके होंगे, इसकी संभावना कुछ कम ही है ।

महाराज मानसिंह के व्यक्तिगत जीवन के विषय में एक किंवदंती द्वारा प्रकाश पड़ता है । यह अवश्य है कि इस किंवदंती की पुष्टि महाराज मानसिंह के निर्माण 'गूजरी महल' से होती है । महाराज मानसिंह मृगया के प्रेमी थे । एक बार वे शिकार खेलने 'राई' नामक ग्राम के पास गए । वहाँ उन्होंने वीरता और सौंदर्य की प्रतिमा एक गूजरी बाला देखी । कहा यह जाता है कि दो भैंसे युद्ध होकर लड़ रहे थे । एकाएक उस बाला ने उनके सींग पकड़कर उन्हें अलग कर दिया । अपार रूपराशि में इस अपूर्व बल का संयोग देखकर महाराज मुग्ध हो गए और गूजरी कन्या से परिणय करने की इच्छा हुई। जब गूजरी के पिता के पास विवाह प्रस्ताव पहुँचा, तब वह प्रसन्न हुआ । परन्तु मानिनी दुहिता कुछ शर्तें लेकर ही स्वीकृति देने को तैयार हुई । उसके लिए अलग महल बनवाया जाय, उसके ग्राम 'राई' का पानी उसके महल तक पहुँचाया जाय । उनकी यह शर्त स्वीकार की गई, मान मंदिर के नीचे ही "गूजरी महल" का निर्माण हुआ । नलों द्वारा राई से ग्वालियर तक पानी लाने की व्यवस्था की गई । वीरवर तँवर राज से शक्ति रूपिणी गूजरी रानी का परिणय हुआ । इतनी है यह किंवदंती । परन्तु प्रश्न अनेक रह जाते हैं । क्या यह महाराज का प्रथम परिणय था ? हमारा उत्तर अनुमान के आधार पर है—नहीं । मानमंदिर और गूजरीमहल की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि मानमंदिर

के पश्चात ही गूजरी महल का निर्माण हूआ। गूजरी महल मे सादगी की ओर ध्यान अधिक है और ज्ञात होता है कि इसके अलंकरण में मान मंदिर की अवशिष्ट सामग्री का उपयोग किया गया है। शत्रुओं से घिरे समय में किले की प्रथम प्राचीर के बाद ही* पटरानी का महल होना संभव नहीं है और अपनी एकमात्र रानी के लिए महल पृथक बनवाने की क्या आवश्यकता हो सकती थी?

गूजरी महल द्वारा पोषित इस किवदंती मे महाराज मानसिह के अनुरागी हृदय की कथा निहित है। उनके संगीत प्रेम के विषय में हमें फकीरुल्ला द्वारा पर्याप्त लिखित प्रमाण मिला है। महाराज मानसिह की संगीत शास्त्र की सेवा के विषय में फकीरुल्ला लिखता है :—

"मानसिह के इस अद्भुत आविष्कार के लिए गायन शास्त्र सदा उनका आभारी रहेगा। आज (फकीरुल्ला के समय से) लगभग २०० वर्ष हो चुके हैं। कदाचित आगे चलकर कोई गायक राजा मानसिंह के समान गायन शास्त्र में प्रवीण हो, जो परमात्मा की अपार लीला से ध्रुपद जैसे अन्य गीत की रचना कर सके। परन्तु मस्तिष्क में अभी तो यही विचार आता है कि ऐसा होना असंभव है।"

---

* संभवतः मानसिंह के काल में यह प्राचीर भी नहीं थी क्योंकि आलमगीरी दरवाजा और उसकी प्राचीर औरंगजेब के समय में मोतमिदखां ने सन १६६० ई० में बनवाया और इस प्रकार गूजरी-महल प्राचीर के बाहर था।

इसके पूर्व फकीररला ने लिखा है —

"राजा मानसिंह ग्वालियर का शासक था और उसका सगीत शास्त्र विषयक ज्ञान तथा कीर्ति अनुपम है। कहते हैं कि सबसे पहले ध्रुपद का आविष्कार राजा मानसिंह ने किया था। उसके समय में अनेक अनुपम गायक थे। राजा स्वय उनसे संगीत विद्या के विषय में वाद-विवाद करता था।"

इस प्रकार सगीत का पोषण महाराज मानसिंह करते थे। इसी सगीत चर्चा में मानकुतूहल की रचना की गई। इसका वणन करते हुए फकीरुल्ला साहब लिखते हैं —

"राजा के हृदय में यह बात उत्पन्न हुई कि ऐसे उच्चकोटि के गायक एक स्थान पर कठिनाई से बहुत समय पश्चात एकत्रित होते हैं। इसलिए यह उचित है कि रागो की सख्या तथा उनके प्रकार विस्तार पूर्वक तथा व्याख्या सहित लिपि बद्ध कर लेना चाहिए ताकि सगीत के विद्यार्थियो को कठिनाई न हो। इस विचार से राग-रागिनी और उनके पुत्रों का विस्तार पूर्वक वर्णन करके ऊपर लिखी पुस्तक "मानकुतूहल" की रचना राजा के नाम से की गई।"

महाराज मानसिंह के समय में हुए सगीत के उत्कर्ष के विषय में हम एक बार फकीरल्ला की ही साक्षी और देंगे जिससे हमारी पूर्व की स्थापना की पुष्टि होगी कि अकबरी दरबार में होने वाला कला का उन्मेष महाराज मानसिंह तँवर की देन थी। फकीरल्ला साहब लिखते हैं —

"संगीत रसिकों को ज्ञात होना चाहिए कि "राग सागर" स्वर्गीय सुल्तान अकबर के समय में रचा गया है। उसमें बहुत से राग मानकुतूहल के विपरीत लिखे गए हैं। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि राग सागर और 'मानकुतूहल' के काल में बहुत अन्तर है। उस समय गायक (गायनाचार्य) थे, परन्तु सुल्तान अकबर के काल में कोई भी गायक संगीत शास्त्र के सिद्धांतों में राजा मान के काल के गायकों को नहीं पाता। दूसरे, सम्राट अकबर के समय में बहुधा 'अताई' व्यक्ति थे, जिन्हें गायन का व्यावहारिक ज्ञान तो था, परन्तु वे गायन के सिद्धांत से अपरिचित थे।"

यह साक्षी उस संगीत प्रेमी फकीरुल्ला की है जो अपने विषय में लिखते है :—

"जो कुछ नकदी और जिन्स मैंने अपने जीवन में कमाया, उसे गायकों की सेवा में व्यय कर दिया। इस पुस्तक के निर्माण में हजारों ही नही, लाखों मुद्राएँ व्यय हुई है। अभी तक मेरा व अन्य निष्पक्ष व्यक्तियों का विश्वास यही है कि मैंने पत्थर की ठीकरियाँ देकर संजीवनी मोल ली है। परमात्मा को धन्यवाद है कि वह मुझे सस्ते में मिलीं।"

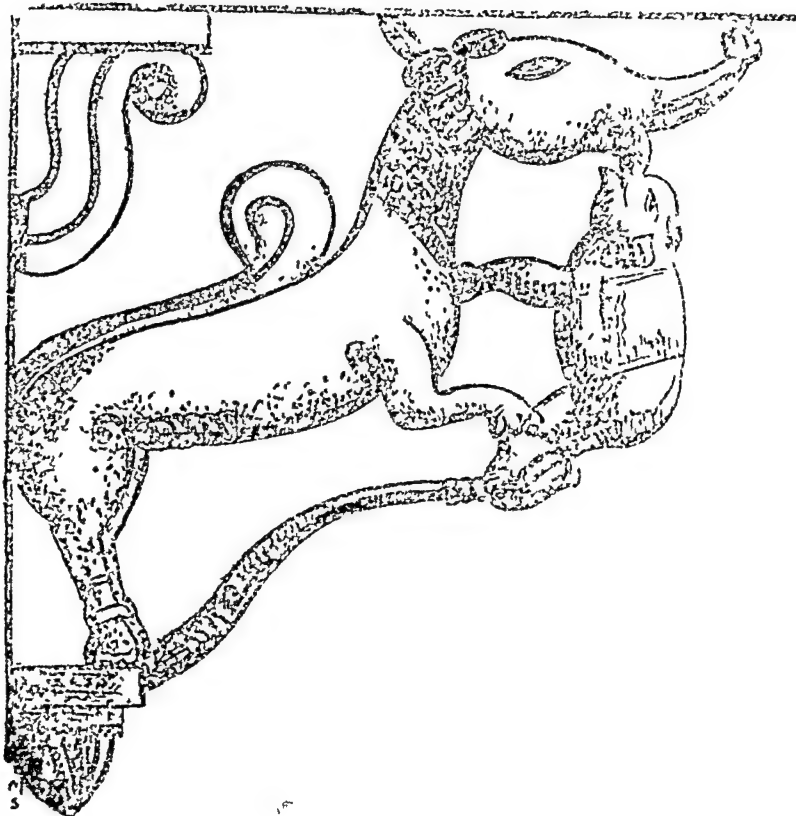
साहित्य रचना की ओर भी महाराज मानसिह की प्रवृत्ति थी । मूल मानकूतूहल में स्वयं महाराज मानसिह के लिखे हुए पद थे। वह प्राप्त नही हो सका, कभी मिल सकेगा, तब वह हिन्दी के लिए वह बहुत बड़ी देन होगी। अभी तो हम मियाँ फकीरुल्ला के इस कहनें पर ही कि संतोष करेंगे कि महाराज मानसिंह ने स्वयं सावंती, लीलावती, मानशाही कल्याण रागों

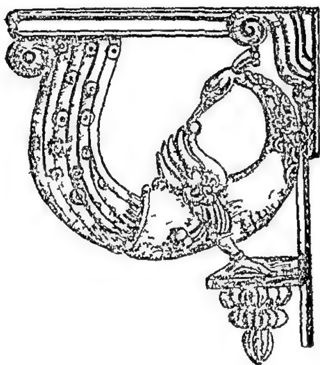
के गीतों की रचना की। उनकी ये रचनाएँ हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास के इतिहास में बहुत अधिक महत्व रखती हैं। ग्वालियर को केन्द्र बनाकर उस समय हिन्दी भाषा और साहित्य विकास कर रहे थे। यहाँ की भाषा उस समय भारत में टकसाली भाषा समझी जाती थी और उसे इन पदों के द्वारा परिमार्जित किया जा रहा था। तत्कालीन साहित्य के अभाव में इस कथन की पुष्टि में हम केवल फकीरुल्ला की साक्षी देकर ही संतोष करेंगे। उसने लिखा है "सुदेश से हमारा तात्पर्य ग्वालियर से है जो अकबराबाद (आगरा) के राज्य का केन्द्र है व जिसके उत्तर में बाटी से मथुरा तक पूर्व में उन्नाव तक, पश्चिम में बारा तक है। यह खंड हिन्दुस्तान में उसी प्रकार है जिस प्रकार ईरान में शीराज।"

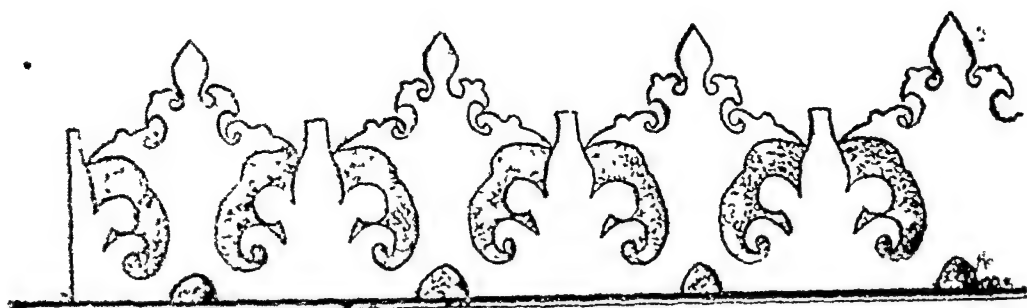
फारसी के अभिमानी फकीरुल्ला ने जिस प्रदेश की तुलना शेख सादी और हाफिज जैसे महाकवियों को जन्म देने वाले नगर से की है, वह उस समय भारत में संस्कृति और साहित्य का केन्द्र समझा जाता होगा इसमें संदेह नहीं। मुगल काल में हिन्दी के जिस महान् कृष्ण काव्य का ब्रज भाषा में निर्माण हुआ है उसका मूल मानसिंह के समय तथा उसके पूर्व ग्वालियर में लिखे गए पदों में है। धीरे धीरे इस भाषा को ब्रज-बहुल करने की प्रवृत्ति बढ़ी और बुंदेलखंडी उपेक्षित होने लगी। वास्तव में हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास का इतिहास अपूर्ण ही रहेगा जब तक कि इस भारतीय "शीराज" के तत्कालीन साहित्य की खोज न हो लेगी और महाराज मानसिंह की भाषा और उनके साहित्य का अध्ययन न हो लेगा।

मूर्तिकला का विकास जैन मूर्तियों के रूप में पूर्व तँवर काल में हो चुका था। इस दिशा में महाराज मानसिंह ने कुछ किया हो, हम यह नहीं जानते परन्तु स्थापत्य और चित्रकला के रूप में मानसिंह हमें अनुपम कृतियाँ दे गए हैं। मानमंदिर का स्थापत्य, उस पर नानोत्पलखचित चित्रों का अलंकरण उनके समय की श्रेष्ठ स्थापत्य के उदाहरण हैं। हमें खेद है कि इस चित्र महल (मानमंदिर का दूसरा नाम) के भित्ति चित्र बिलकुल नष्ट हो गए हैं और वह अपूर्व कलाकृति आज पूर्णतः अप्राप्य है। मान मंदिर एवं गूजरी महल के विषय में हम आगे लिखेंगे।

इस वर्णन से महाराज मानसिंह की बहुमुखी प्रतिभा का कुछ आभास मात्र मिलेगा। उसके अपार शौर्य और राजनीतिक चातुर्य की चर्चा हम पूर्व में कर चुके हैं। महाराज मानसिंह सम्बन्धी साहित्य न जाने तँवरघार के किन ग्रामों में छुपा पड़ा होगा और ईश्वर न करे वह दीमक अथवा अग्नि का भोजन ही बन चुका हो।







तँवर कला का विकास

(मार्नसिं के पूर्व)

कोई भी अप्रतिम कला-कृति एकाएक निर्मित नहीं होती। उसके पीछे कलाकारों की शताब्दियों की साधना होती है। गुप्तकाल में जो अनेक अप्रतिम कलाकृतियाँ सामने आईं, उनके पीछे सहस्रों वर्षो की साधना थी। इसी प्रकार मानमंदिर जैसी स्थापत्य-कृति के निर्माण के पूर्व भी इस तँवर वंश के नरेशों ने प्रस्तर कला के विकास में प्रयोग किए थे।

इस राजवंश के संस्थापक वीरसिंह तँवर ने कोई स्वतंत्र भवन बनवाया हो, ऐसा ज्ञात नहीं होता। लक्ष्मण-पौर के नाम से विख्यात वीरसिंह देव का निर्माण पूर्व के किसी ध्वस्त द्वार के पुनर्निर्माण का ही प्रयास है।

ग्वालियर नगर की ओर स्थित आलमगीरी द्वार के बाद यह तीसरा द्वार है । इसके आस-पास ईसवी नवम शताब्दी की मूर्तियाँ बनी हुई हैं । इसमें जो खमे और कीर्तिमुख उलटे-सीधे लगे हुए हैं वे भी नवीं शताब्दी के ही ज्ञात होते हैं । वीरसिंह देव के समय में तँवर कारीगर यह भी ध्यान न रख सका कि वह खमो और कीर्तिमुखो को सीधा लगा रहा है या उलटा । वास्तव में यह एक उपयोगी निर्माण मात्र था जो गढ की रक्षा के लिए त्वरा में खडा किया गया था ।

उद्धरणदेव अथवा विक्रमदेव के काल का कोई निर्माण प्राप्त नही हुआ । उसके पश्चात् महाराज डूगरेन्द्रसिंह के समय का गणेश द्वार आज भी खडा है । वह अत्यत अनलकृत निर्माण है । महाराज डूगरसिंह अपने युद्धो में अधिक सलग्न रहे । यह द्वार ग्वालियर गढ को अधिक दृढ बनाने की दृष्टि से बनवाया गया है । परन्तु इनके काल में जिन जैन मूर्तियो का निर्माण प्रारम्भ हुआ वह मूर्तिकला के क्षेत्र में इस प्रदेश के कारीगरो के अभिनव प्रयास थे ।

गणेश द्वार की शैली से स्पष्ट है कि डूगरेन्द्रसिंह के समय तक तँवरो का ध्यान स्थापत्य में मनोरमता लाने की ओर नही था ।

कल्याणमल्ल के शासन में तँवर स्थापत्य ने कला के क्षेत्र में पदार्पण किया । अन्यथा घटना-हीन इनके शासन में ज्ञात होता है कि उपयोगिता के साथ सौंदर्य-साधन की ओर प्रयास किए गए । कल्याणमल्ल ने आज आलमगीरी द्वार के बाद स्थित बादल महल और बादल द्वार बनवाया । इस बादल-



महाराज कल्याणमल तँवर के समय मे तॅवर स्थापत्य में कला का समावेश करने का प्रयास प्रारम्भ हुआ। हिंडोला द्वार अथवा बादल महल के इस द्वार में महाराज मानसिंह के कलामय स्थापत्यो का पूर्व-रूप दिखाई देता है। (पृष्ठ २८-२९)

द्वार का नामकरण कल्याणमल्ल के भाई बादल के नाम पर हुआ है।

आलमगीरी द्वार बादको औरंगजेब की ओर से ग्वालियर गढ़ के प्रबंधक मोतमिदखां द्वारा सन् १६६० ई० में बना है। इसके अस्तित्त्व के पूर्व यह वादल द्वार ही ग्वालियर गढ़ का इस ओर का प्रवेश द्वार था। इस द्वार के निर्माण में हमें मानमंदिर की हथियापौर का पूर्व रूप दिखाई देता है। इसमे रंगीन प्रस्तर खंड लगाकर नानोत्पलखचित चित्रकारी करने के प्रथम दर्शन होते है एवं तक्षण का भी उत्कृष्ट उदाहरण प्राप्त होता है।

इस वादल द्वार में हिडोले की भी सुन्दर योजना थी और इस कारण इसका नाम हिंडोला द्वार भी पड़ा।

वास्तव में तँवर स्थापत्य में बादल द्वार का बहुत महत्त्व है।

कल्याणमल्ल के राज्यकाल मे डूंगरेन्द्रसिह के समय में प्रारम्भ की गई जैन प्रतिमाएँ भी पूर्ण हुईं।

ग्वालियर गढ़ की इन प्रतिमाओं को पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता है। (१) उरवाही समूह (२) दक्षिण पश्चिम समूह (३) उत्तर पश्चिम समूह (४) उत्तर पूर्व समूह तथा (५) दक्षिण पूर्वी समूह। इनमें से उरवाही द्वार के एवं पब्लिक पार्क के पास के समूह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उरवाही समूह अपनी विशालता से एवं दक्षिण पूर्व का समूह अपनी अलंकृत कला द्वारा ध्यान आकर्षित करता है।

उरवाही समूह में २२ प्रतिमाएँ है जिनमें छह पर संवत् १४९७

के अभिलेख खुदे हैं। इनमें सबसे ऊँची खडी प्रतिमा २० नबर की है। इसे बाबर ने २० गज का अनुमान किया था परन्तु वास्तव में यह ५७ फीट ऊँची है। चरणों के पास यह ९ फीट चौडी है। २२ नंबर की नेमिनाथजी की मूर्ति बैठी हुई बनी हुई है जो ३० फीट ऊँची है। १७ नबर की प्रतिमा पर तथा आदिनाथ की प्रतिमा की चरण-चौकी पर डूगरेन्द्र देव के राज्यकाल का सवत् १४९७ का लम्बा अभिलेख खुदा है।

दूसरा दक्षिण-पश्चिम का समूह एक-खबा ताल के नीचे उरवाही द्वार के बाहर की शिला पर है। इस समूह में पाँच मूर्तियाँ प्रधान हैं। २ नबर की स्त्री प्रतिमा लेटी हुई ८ फीट लम्बी है। इस पर ओप किया हुआ है। यह प्रतिमा विशाला माता की ज्ञात होती है। १ नबर के प्रतिमा समूह में एक स्त्री, पुरुप तथा बालक है।

उत्तर पश्चिम समूह में केवल आदिनाथ की एक प्रतिमा महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इस पर सवत् १५२७ का एक अभिलेख खुदा हुआ है। इसी प्रकार उत्तर पूर्व समूह भी कला की दृष्टि से महत्त्व हीन है। मूर्तियाँ छोटी छोटी है और उन पर कोई लेख नही है।

दक्षिण-पूर्व समूह मूर्तिकला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। यह मूर्ति समूह फूलबाग ग्वालियर दरवाजे से निकलते ही लगभग आधे मील तक चट्टानो पर खुदा हुआ मिलता है। इनमें से लगभग २० प्रतिमाएँ २० फीट से ३० फीट तक ऊँची है और इतनी ही ८ से १५ फीट तक ऊँची है। इनमें आदिनाथ, नेमिनाथ, सुपध,(पद्मप्रभु), चन्द्र प्रभु, सभू (सँभव) नाथ, नेमिनाथ, महावीर,





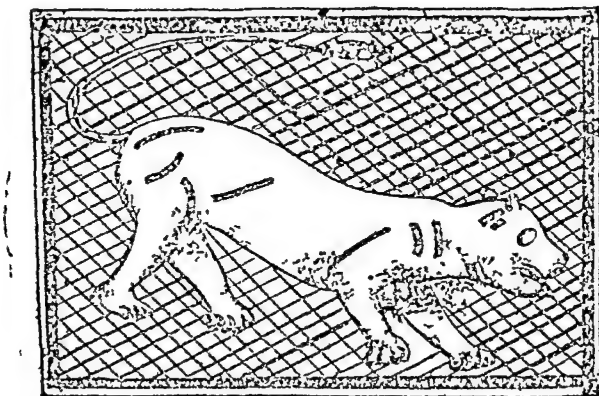
ग्वालियर गढ पर निर्मित जैन प्रतिमाए महाराज डूँगरेन्द्रसिह तथा कीर्तिसिह तँव
के समय में हुए धार्मिक मूर्त्तिकला के उत्कर्ष उदाहरण है । मध्य कालीन मूर्ति
कला स्थापत्यकला की अनुगामिनी थी। ग्वालियर गढ की यह मूर्त्तियाँ प्रकृति
के स्थापत्य--ग्वालियर गढ— को देव मदिर का रूप देती हैं। (पृष्ठ ३०

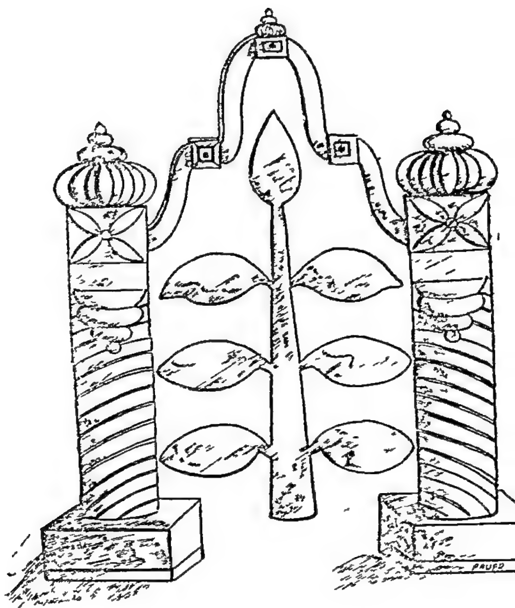
कुम्भ (कुन्थ) नाथ की मूर्तियाँ हैं। इनमें से कुछ पर संवत् १५२५ से १५३० तक के अभिलेख खुदे हैं।

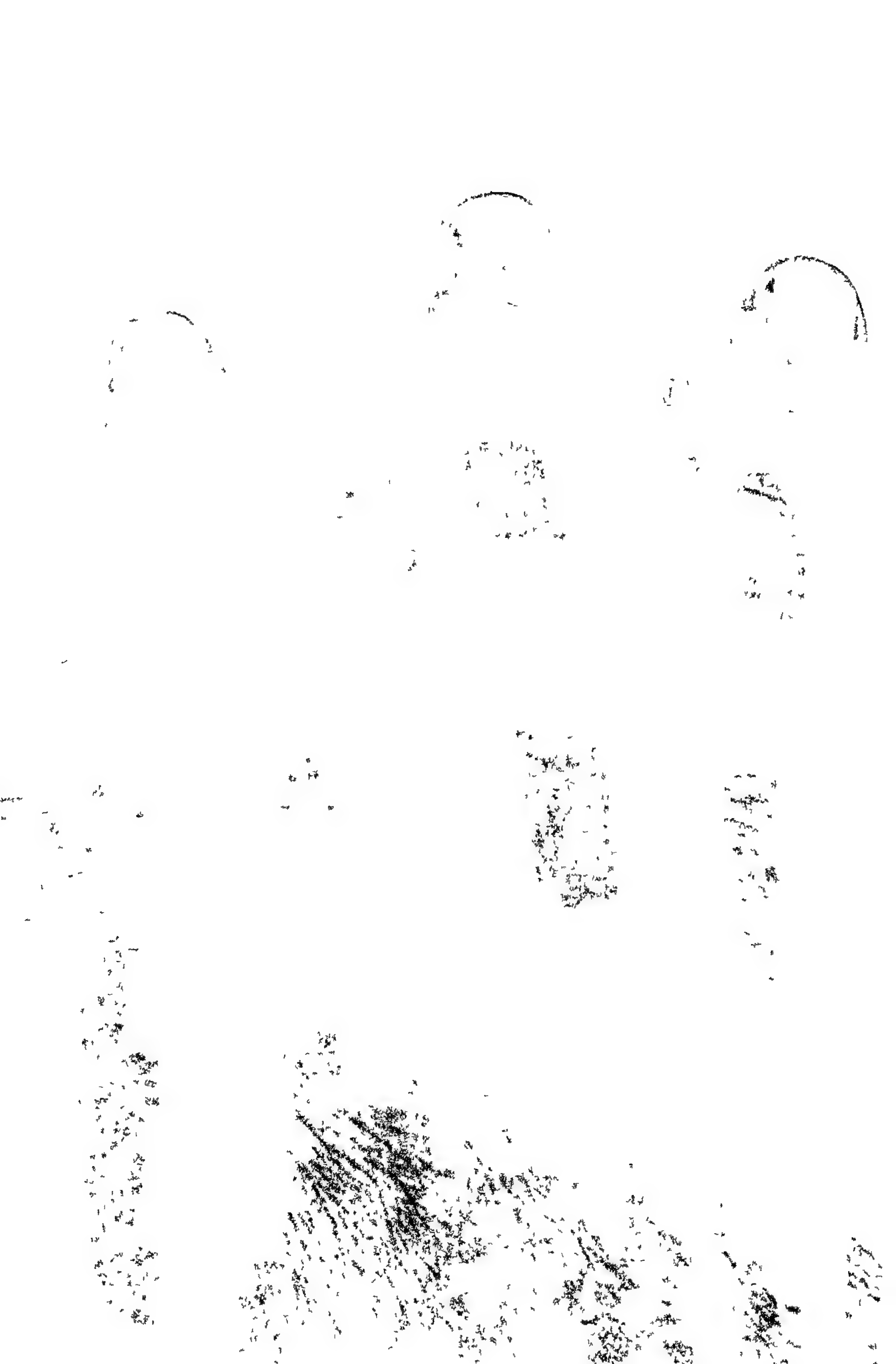
गढ़ की शिलाओं में उत्कीर्ण इन प्रतिमाओं के अतिरिक्त भी कुछ मूर्तियाँ इस काल में बनी ज्ञात होती हैं। तेली के मंदिर के पास कुछ जैन प्रतिमाएँ रखी हुई हैं। वे भी इनकी समकालीन ज्ञात होती हैं।

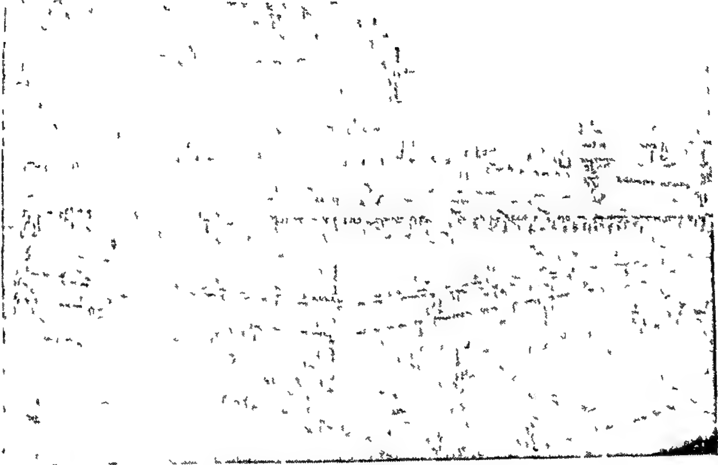
इन मूर्तियों के निर्माण के लगभग ६० वर्ष पश्चात् ही बाबर की वक्र दृष्टि इन पर पड़ी। सन् १५२७ में उसने उरवाही द्वार की प्रतिमाओं को ध्वस्त कराया। इस घटना को बाबर ने अपनी आत्मकथा में बड़े गौरव के साथ उल्लेख किया है। बाबर के साथियों ने उन मूर्तियों के मुख तोड़ दिए थे, जो पीछे से जैनियों द्वारा बनवा दिए गए हैं।

यह सब स्थापत्य एवं तक्षण कला के प्रारम्भिक विकास थे। इनका पूर्ण विकसित रूप तो महाराज मानसिंह के समय में दिखाई दिया।

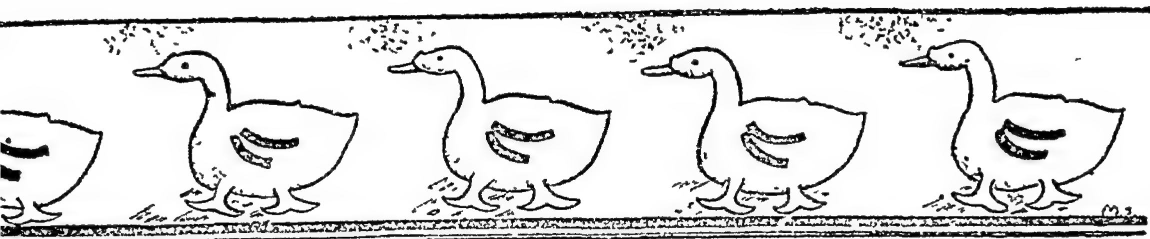








महराज मानसिंह की प्रणय गाथा का स्थायी चिह्न गूजरी महल । इसके पीछे हाल में खोजा गया गुप्त मार्ग तोंवर राजा के कौतूहल प्रेमी हृदय का द्योतक है (पृष्ठ ३६)



मानसिंह का स्थापत्य

आज से चार सौ वर्ष पूर्व किसी प्रभात बेला मे जब किसी सुदूर-यात्री ने पूर्व की ओर से मरीचिमाली का प्रथम किरणजाल ग्वालियर गढ़ के मस्तक पर गिरता हुआ देखा होगा, और मानमंदिर की पृथ्वी तल से ३०० फीट ऊँची ६ दीर्घ मीनारो की सुनहली गुम्बदों के प्रकाश के नीचे इंद्रधनुष के रंगों से रंजित कदली तथा अन्य आकर्षक रूपों में जगमगाती हुई ३०० फीट लम्बी आभा देखी होगी तब वह वास्तव में एकाएक इस भ्रम में पड गया होगा कि गिरिराज गोपाद्रि को स्वयं मायापति ने यह अलौकिक मणि मुकुट पहनाया है। आज चार शताब्दियों के क्रूर प्रहार ने मान मंदिर का

रग बहुत कुछ छीन लिया है, अनेक नानोत्पलखचित आकार हट गए हैं गुम्वदो का स्वर्णिम ताम्र-आवरण लुब्ध मानव लूटा ले गया, परन्तु उस भव्य प्रासाद का जो भी शेष है वह अपनी स्थिति, सौंदर्य एव विशालता के कारण अद्वितीय है ।

क्या आश्चर्य है कि यदि विजयी बाबर रुग्णावस्था में भी, ऐसी दशा में जबकि वह अफीम के प्रभाव के कारण बार बार वमन कर रहा था, इस अपूर्व कला कृति को देखने के लिए आतुर हो उठा था । मध्यकालीन हिन्दू स्थापत्य के जो भी अवशेष आजकल प्राप्त हैं, वे बहुधा मदिरो से सबधित हैं । साधारण आवास अथवा मठो के अवशेष मुगुलो के पश्चात के ही अधिक मिलते हैं और उन पर मुगुलों की कला की छाप स्पष्ट दिखाई देती है । ग्वालियर गढ के मानमदिर और गूजरीमहल दो ऐसे राजभवन हैं, जो मुगुलो के आगमन से बहुत पूर्व निर्मित हुए और विशुद्ध हिन्दू स्थापत्य शैली के उदाहरण हैं । इन भवनो की शैली का प्रभाव मुगल राज-भवनो पर भी पडा है और इस कारण इनका स्थान भारतीय कला के इतिहास मे अत्यत महत्त्वपूर्ण है ।

पुराने ग्वालियर नगर की ओर गव से छाती उठाए ३०० फीट लम्वी तथा १०० फीट ऊँची इस महल की पूर्वी दीवार अत्यत विशाल और साथ ही अत्यत कलापूर्ण ज्ञात होती है । हथिया पौर से दूसरे छोर तक छह बुर्जें तथा चार झरोखे इस लम्बाई को अनुपात पूर्ण भागो में बाट देते हैं और



मानमदिर के सकीर्ण द्वार में से निकलने के पश्चात पहले आगन मे ही यह भव्य प्रकोष्ठ मिलता है जिसे निर्देशक पूजागृह बतलाता है। भीतर और बाहर इसमें प्रस्तरो का प्रत्येक भाग खोद कर सुन्दर बनाया गया है। (पृष्ठ ३८)

इन पर बने नानोत्पलखचित चटकीले रंगों के चित्र एवं खुदाई के काम इसे विचित्र सौंदर्य प्रदान करते हैं।

अत्यंत उत्तुंग हथियापौर से प्रवेश करते ही इस प्रासाद की दक्षिणी दीवार दिखाई देती है जो १६० फीट लम्बी है। इसमें तीन वुर्जें बनी हुई हैं। इस पार्श्व पर आज भी अत्यंत सुन्दर हंस पंक्तियाँ, कदली वृक्ष, गज तथा मकर बने हुए हैं।

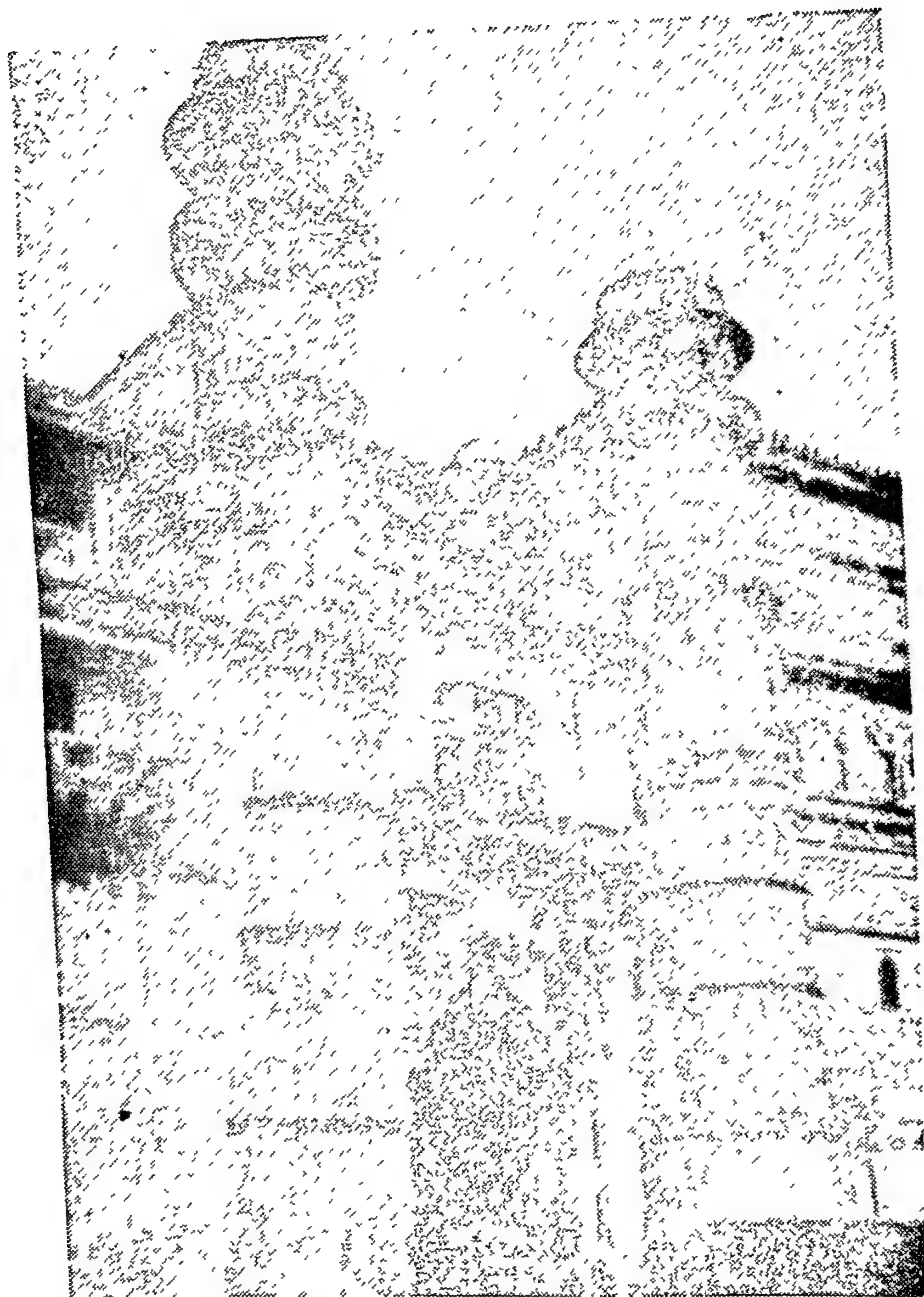
पश्चिम पार्श्व की मूल कारीगरी नष्ट प्राय है, परन्तु इस ओर की मयूराकार टोडियाँ अत्यंत मनमोहक हैं। यही दशा उत्तरी पार्श्व की है।

आज इस महल में प्रवेश मार्ग उत्तर की ओर से है। सामने ही सैनिकों के आवास बने हैं और दाहिनी ओर महल का द्वार है। जैसे जैसे आगे बढ़ते हैं द्वार अत्यंत छोटे होते जाते हैं। १५० फीट लम्बे और १२० फीट चौड़े स्थल में लगभग चालीस प्रकोष्ठ और दो चौक हैं। मानसिंह के जीवनकाल में सतत चलने वाले युद्धों का प्रभाव महल पर भी पड़ा है। इसके द्वार विशेष रूप से आक्रमणकारी से रक्षा कर सकने की दृष्टि से छोटे रखे गए हैं। यद्यपि प्रकोष्ठ छोटे हैं, परन्तु उनमें खुदाई तथा नाना रंग के उत्पलों की रचना की गई; और उनको अत्यंत सुन्दर बना दिया गया है। महल मूलतः दो खंडा है। परन्तु पूर्वी दीवार के सहारे नीचे दो खंडे तलघर हैं जो ग्रीष्म ऋतु से बचने के लिए बनाए गए हैं।

सम्पूर्ण महल खुदाई के काम से इतना अधिक सजा हुआ है कि वह कला

की एक अनुपम कृति बन गया है।

इस महल का सब प्रथम वर्णन मुगल सम्राट् बाबर द्वारा उसके आत्म-चरित 'बाबरनामा' में ई० सन् १५२७ में किया गया है। वह स्वय इस महल को देखने गया। उसने लिखा है—"मैंने मानमदिर और विक्रमाजीत के महल भली प्रकार से देखे। यह विचित्र निर्माण है और पूरे गढे हुए पत्थरो के बने है। यद्यपि वे बेडौल हैं। सब राजाओ के भवनो में मानसिंह का महल श्रेष्ठतम और विशालतम है। पूर्व की ओर अन्य पार्श्वों की अपेक्षा उसमें विस्तार से कारीगरी की गई है। यह पार्श्व ४० या ५० करी (गज) ऊँचा होगा और पूरा का पूरा गढे हुए पत्थर का है जिस पर पलस्तर की सफेदी है। कुछ भागो में वह चार खडा है। नीचे के दो खड बहुत अंधेरे हैं और हमें मोमबत्ती लेकर उनमें जाना पडा। एक ओर इसमें पाँच गुमटियाँ है, जिनके बीच बीच हिन्दुस्तान की शैली में चौकोर गुमटियाँ है। बडी गुमटियो पर तावे के सुनहरी पत्र चढे हुए हैं। दीवारो के बाहरी पार्श्व पर रंगीन उत्पलो का काम है, कदली वृक्ष के पत्तो की मनुहार हरे उत्पलो से दिखाई गई है। उत्तरी गुमटी के पास हथिया पौर है। प्रवेश द्वार के पास हाथी की मूर्ति दो महावतो के साथ बनी हुई है। वह बिलकुल हाथी के समान ही बनी हुई है और उस पर से ही इस द्वार का नाम हाथी पौर पडा है। जहाँ भवन के चार खडे है, वहाँ सबसे नीचे खड में एक खिडकी है, जिससे यह हाथी पास से दिखाई देता है। ऊपर लिखी गुमटियाँ सबसे ऊपर बैठने के कमरे दूसरे खड पर है। ये वायु रहित है, यद्यपि उनमें हवा का हिन्दुस्तानी रूप से प्रबंध है।"



मानमंदिर की हथिया पौर । यह द्वार स्थापत्य कला का अत्यन्त सुन्दर उदाहरण है । मानमंदिर की कारीगरी का श्रेष्ठतम रूप इस द्वार में दिखाई देता है । (पृष्ठ ३७)

आज यह हाथी और उसके सवार अपने स्थान पर नहीं है। न जाने वे कहाँ गए तथा उनका क्या हुआ? सम्राट बाबर का बेडौल पत्थरों से तात्पर्य विक्रमादित्य के महलों से हो सकता है क्योंकि मानमंदिर में बेडौल पत्थर का खोज निकालना भी कठिन है।

हथिया पौर स्वतंत्र रूप से अत्यंत सुन्दर निर्माण है। बाहर से देखने में यह महल के क्रम में ही दिखाई देता है। इस विशाल द्वार में सौंदर्य और उपयोकिता दोनों की दृष्टि रखी गई है। चार सुन्दर खंभों पर तोरण द्वार आधारित है, और इसके ऊपर सैनिकों के लिए प्रकोष्ठ है। तोरण के डाट में विशाल मालाओं के रूपक बनाए गए हैं। ऊपर झिलमिली का जालीयुक्त एक और प्रकोष्ठ है, जहाँ रानियाँ गढ़ में आने वाले या गढ से जाने वाले आयोजनों का दृष्य देख सकें। हथिया पौर के दोनों ओर की विशाल मीनारों पर आज भी नाना रंगों के उत्पल खंड अपने पूर्व रूप में अन्य सब मीनारों की अपेक्षा अधिक सुरक्षित हैं।

इस द्वार के तोरण के भीतरी भाग में प्रारम्भ में कभी सुन्दर भित्तचित्र रहें होंगे। उनके कुछ चिह्न अब तक दिखाई देते हैं।

हथिया पौर और पूर्वी पार्श्व की कारीगरी से भी अधिक आकर्षक कारीगरी का काम दक्षिणी पार्श्व पर किया गया है। हथिया पौर से प्रवेश करते ही दाहिने हाथ पर लगभग १५० फीट लम्बा और ६० फीट ऊँचा यह पार्श्व है। सबसे नीचे मकर पंक्ति बानई गई है और मुखों के समीप कमल पुष्प बने हुए हैं। इस पंक्ति के ऊपर हंसों की पंक्ति है, और भी ऊपर खुदाई

के काम के बीच सिंह, गज एव कदली की आकृतियाँ बनी हुई हैं। और भी ऊपर जालियों में अनेक अलंकरण काटे गए हैं। यह सम्पूर्ण पार्श्व कला-कौशल का अत्यंत रमणीय उदाहरण है। रंगीन पत्थरों के संयोजन से खुदाई और कटाई से अत्यंत सुन्दर आकृतियाँ बनाई गई हैं। महल के भीतर तथा टोडियो पर जितनी सुन्दर और आकर्षक काल्पनिक जीवों की आकृतियाँ बनाई गई है, उनके भी नमूने यहाँ मिल जाते है।

मान मंदिर के भीतर दोनो चौकों में और प्रकोष्ठो में कारीगर ने किसी पत्थर को अछूता नहीं छोड़ा। पहले चौक में बाई ओर रंगशाला है जिसमें ऊपर से पर्दे के पीछे से रानियो के बैठने की भी योजना की गई है। इसमें जो जाली लगाई गई है उसमें नर्तनियों का नृत्य मुद्रा में अंकन किया गया है। पूर्व की ओर ऊपर के प्रकोष्ठो की झिलमिली से सम्पूर्ण ग्वालियर नगर दिखाई देता है और इस समय भी वहा बैठकर बहुत दूर तक की हल चलो का निरीक्षण किया जा सकता होगा।

नाना रंगों के उत्पलो से उत्पन्न किए गए सौंदर्य और पत्थर को काट-कर उसमें प्रकृति के उपकरणों की सज्जा तथा विशालता और मनोरमता का समन्वय इस महल की विशेषता है।

महाराज मानसिंह तोमर अपने कला प्रेम के साथ ही अपनी प्रणय कथा को भी गूजरी महल के रूप में अमर कर गए है। जनता में प्रचलित किंवदंतियों को इस नाम से पुष्टि मिलती है। महाराज मानसिंह को दूसरे



ग्रौर भीतर जाने पर दूसरे चौक में बाईं ग्रोर यह दुखंडी ग्रौर ग्रत्यन्त मनोरम रंगशाला है। इसमें दूसरे खंड स नीचे दखने की जाली है जिसमें नृत्यमुंडा मे स्त्रियो के रूप काटे गए है। (पृष्ठ ३८)

निर्माण 'गूजरी महल' के संबंध मे प्रचलित किंवदंति हम पहले लिख चुके है ।

गूजरी महल ऐसे स्थान पर बना हुआ है जहाँ उसका सौंदर्य एकाएक सामने नही आता जब तक कि दर्शक उसके पास ही न पहुँच जाय । परन्तु द्वार पर जाते ही स्पष्ट ज्ञात होता है कि इसमें मान मंदिर के निर्माता की कल्पना कार्य कर रही है । यद्यपि मानमंदिर के समान प्रत्येक कोना सजाने तथा प्रत्येक प्रस्तर को चित्रित करने का प्रयास नही किया गया, परन्तु फिर भी प्रत्येक दृष्य-भाग को सजाने की चेष्टा अवश्य किया गयी है ।

विविध रंगों के उत्पल खंडों की कारीगरी और पत्थर की कटाई इस महल में भी दिखाई देती है ।

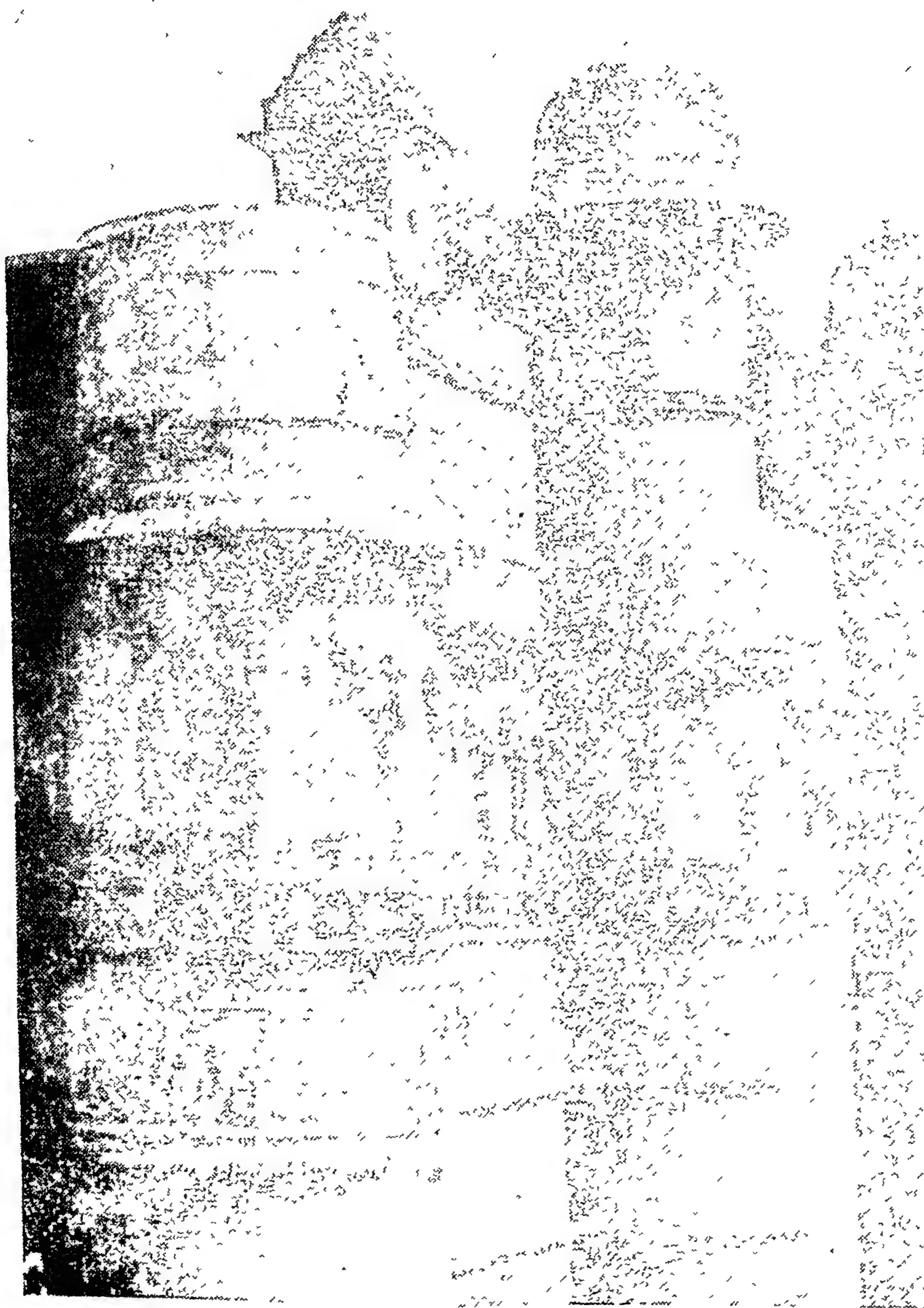
खुले आंगन के चारों ओर छोटे छोटे अनेक कमरे है जिनके तोडों और छज्जों में नाना भांति के कटाव है । आंगन के बीच में दो खंडा तलघर है जिसमें गर्मी से बचने का पूर्ण प्रबन्ध है । इस तलघर के मध्य में एक हाल है जिसके चारो ओर झरोखे बने हुए है ।

महाराज मानसिह के ये दोनों महल उसके कला प्रेम के अत्यंत श्रेष्ठ उदाहरण है । इनमें स्थापत्य के साथ साथ मूर्तिकला एवं चित्रकला का सुन्दर समन्वय हुआ है । नानोत्पलखचित कलाकृतियों के रंग आज इतनी शताब्दियों के बाद भी अत्यंत चटकीले बने हुए है । मान मंदिर के सकरेपन की जो शिकायत बाबर ने की है उसके संबंध में यह न भूलना चाहिए कि यह

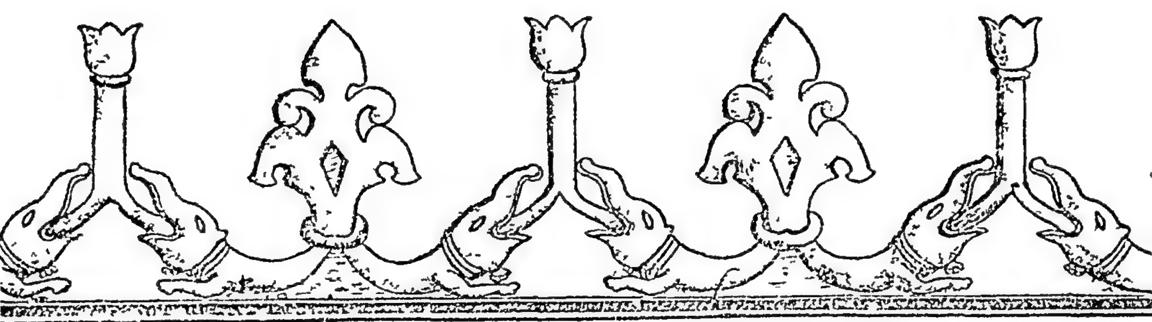
कला कृति उस मानसिंह ने खडी की है जिसे जीवन में प्रतिक्षण शत्रुओ से लोहा लेने के लिए तत्पर रहना पडता था और जिसे अपने इस चित्र महल को भी यह सोचकर बनाना पडा होगा कि यदि अवसर आए तो राजपूत रमणियां आक्रमणकारियो से छोटे छोटे द्वारो के पर्दे में खडे होकर आत्म रक्षा कर सकें।

इन महलो की नानोत्पलखचित चित्रकारी, इनमें मिलने वाला उत्कीर्णक की छैनी का कौशल, इन्हें हिन्दू भारत की महत्तम कलाकृतियो में रखता है। मानमदिर के दक्षिणी पार्श्व को देखते हुए एक दिन हमारे मुह से अचानक निकल गया था कि यह कृति मानसिंह तँवर को हिन्दू शाहजहां कहने को बाध्य करती है। उसके पास शाहजहां का साम्राज्य न था, और न वह शान्ति थी, अन्यथा वह उससे कहीं अच्छे निर्माण कर जाता।

मुगल नानोत्पलखचित कलाकृतियों पर इटली का प्रभाव बतलाने की कल्पना अनेक विद्वानो ने की है जिनमें डा० विन्सेण्ट स्मिथ प्रधान है। परन्तु मानसिंह के इन दोनो महलो का अत्यत निकट से अध्ययन करने के पश्चात् और उसकी तुलना इन मुगल कृतियो से करनेके पश्चात इन विद्वानो के इस कथन का सत्य फीका पड जाता है। मुगल कालीन यह कला कृतियाँ हिन्दू एव पारसीक कला के सम्मिश्रण का परिणाम है और मानमदिर तथा गूजरी महल के नानोत्पल खचित हस, मयूर, कदली, मकर एव अन्य बेल बूटे बनाने वालो के वशजो ने सीकरी के महलो में एव ताज महल में भी काम किया होगा, यह निश्चय है।



दक्षिणी पार्श्व—दूसरे दृष्टिकोण से। बाईं ओर की मीनार का कुछ भाग नया बनवा[illegible]
गया है, परन्तु वह प्राचीन निर्माण के कौशल से बिलकुल मेल नहीं खाता। (पृष्ठ २[illegible]



मानकुतूहल और रागदर्पण

महाराज मानसिंह तँवर के दरबार में निर्मित मानकुतूहल की हमें खोज थी। परन्तु उसके स्थान पर प्राप्त हुआ औरंगजेब के काश्मीरके सूबेदार फकीरुल्ला द्वारा मानकुतूहल का अनुवाद। यह अनुवाद केवल अनुवाद ही नहीं है। स्वयं फकीरुल्ला ने इसकी भूमिका में लिखा है कि हिजरी सन् १०७३ (ई० सन् १६७१) में उसे मानकुतूहल की प्रति मिली जो महाराज मानसिंह के समय की लिखी हुई थी। उसने इस पुस्तक का अनुवाद किया और अन्य आवश्यक बातें उसमें मिला दीं जिससे संगीत के विद्यार्थियों को भरत-संगीत, संगीत दर्पण और संगीत-रत्नाकर देखने की आवश्यकता न पड़े और इससे उनका अभिप्राय पूरा हो जाय।

फकीरुल्ला ने अपने इस सग्रह का नाम राग-दर्पण रखा है। इस फारसी के छोटे से ग्रथ में 'मानकुतूहल' के वर्ण्य विषय के अतिरिक्त अन्य अनेक महत्वपूर्ण एव मनोरजक बातो की जानकारी मिलती है। फकीरुल्ला बहुत मौजी जीव था और भारतीय और मुस्लिम सगीत का उसे बहुत अच्छा ज्ञान था। इतिहास की जानकारी भी उसकी कम नही थी। अपने विषय का प्रतिपादन करते करते वह अनेक ऐतिहासिक तथ्यो पर भी प्रकाश डालता जाता है। गायन का तो फकीरुल्ला ने अपने इस ग्रथ में अमीर खुसरो से लेकर अपने समय तक का इतिहास ही दे दिया है। भारतीय सगीत और सगीतज्ञो के साथ साथ मुस्लिम देशो की जानकारी भी दी है।

इस प्रकार मूल 'मानकुतूहल' के अभाव को तो फकीरुल्ला साहब का अनुवाद पूरा नही करता परन्तु उनके रागदर्पण का राजनीतिक एव सगीत के इतिहास की सामग्री देने वाली पुस्तक के रूप में अत्यधिक महत्त्व है।

फकीरुल्ला ने इस पुस्तक को तीन वर्ष में लिखा है। उनके व्यस्त जीवन में उन्हें पुस्तक लिखने का अवकाश कम मिलता था। वे इस पुस्तक को सम्राट औरगजेब को अर्पित करना चाहते थे। फारसी मसनवियो की पद्धति पर वे इसमें सम्राट की कीर्ति का भी वर्णन करना चाहते थे। वे इस कार्य को पूर्ण न कर सके और प्रारभ में केवल ईश्वर और पैगम्बर की ही स्तुति है। यह स्तुतियाँ भी गायन शास्त्र के ग्रथ के अनुकूल है। पुस्तक को लेखक ने दस अध्यायो में विभाजित किया है।

पहले अध्याय में लेखक (अनुवादक) ने अपना नाम फकीरुल्ला

दिया है और लिखा है कि सन् १०७३ हिजरी में एक पुरानी किताब देखने में आई जिसका नाम 'मानकुतूहल' था। इस पुस्तक का कर्ता ग्वालियराधीश राजा मानसिंह को लिखा है। राजा मानसिंह गान विद्या में निपुण था और प्रसिद्ध तो यह है कि ध्रुव पद का आविष्कार इसी राजा ने किया। एक बार संयोग से नायक बख्शू, नायक पांडवीय जो तैलंगाना देश से कुरुक्षेत्र स्नान करने आया था, देव आहंग (देवों से स्वर वाला) नायक महमूद और नायक करण इस राजा की सभा में इकट्ठे हुए। राजा ने इसे स्वर्ण संयोग समझा। शिक्षार्थियों को सुलभ करने के लिए राजा ने इन गायनाचार्यो से वाद-विवाद करके रागनियों के लक्षणों पर पुस्तक लिखवाई। यह पुस्तक ऐसी बनी कि जिस पर भरोसा किया जा सकता है और इसीलिए लेखक ने इसका अनुवाद फारसी में किया। यह पुस्तक "भरत" मत को मानती है। अनुवाद के साथ साथ कुछ आवश्यक बातें "भरत संगीत" "संगीत दर्पण" और "रत्नाकर" से चुनकर इसमें बढ़ा दी गई हैं, ताकि सीखने वालों को उन पुस्तकों को देखने की आवश्यकता न पड़े और इस पुस्तक का नाम "राग दर्पण" रखा, क्योंकि एक छोटे से दर्पण में पहाड़ और जंगल सबका दृश्य दिखाई दे जाता है। कुछ राग उसमें "नृत्यनृत्यी" और "चंद्राबली" के मत से भी लिखे हैं।

दूसरे अध्याय में राग रागनियों का वर्णन है और कुछ पारिभाषिक शब्दों की भी व्याख्या की गई है। इस अध्याय में यह भी ज्ञात होता है कि मालवे का प्रसिद्ध नवाब बाज बहादुर, अमीर खुसरो, शेख बहाउद्दीन जकरिया मुल्तान, सुल्तान हुसेन शर्की जौनपुर गान विद्या में "उस्ताद" का पद रखते थे। लेखक भी अपने को इस विद्या का कामिल लिखता है।

तीसरे अध्याय में यह वर्णन है कि किस ऋतु में कौन सी राग रागिनी या उनके पुत्र गाए जाते हैं और उनके बोलों में कौन प्रकार प्रारम्भ में नहीं रखना चाहिए। साथ ही "ग्रामों" का भी वर्णन है।

चौथे अध्याय में शरीर के किस भाग में से कौन सा स्वर उत्पन्न होता है और "ध्रुव पद" "विष्णुपद" "ख्याल" "माहरा" आदि के रूपों का वर्णन है। उनके रसों का भी विवेचन किया गया है।

पाँचवें अध्याय में वाद्यों का वर्णन है। तार या तांत या खाल के योग से बने बाजों के अतिरिक्त जल तरंग का भी विस्तृत वर्णन है। इसके पश्चात् नायिका भेद दिया गया है।

छठे अध्याय में गायकों के ऐबों का वर्णन है।

सातवें अध्याय में गायकों का गला आदि कैसा हो, इसका वर्णन है।

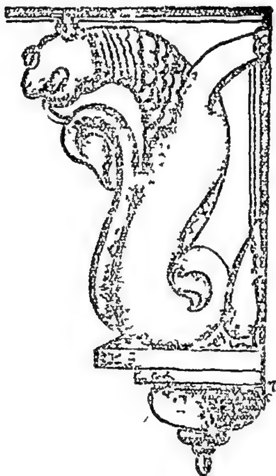
आठवें अध्याय में गायन के "उस्ताद" की पहिचानें बतलाई गई हैं। भरत मत के अनुसार वह संस्कृत का पंडित होना चाहिए, कोष पर अधिकार रखता हो, शास्त्री हो, बुद्धि ऐसी कुशाग्र हो कि दूसरों से विवाद कर सके और कोई नवीन चीज पैदा कर सके।

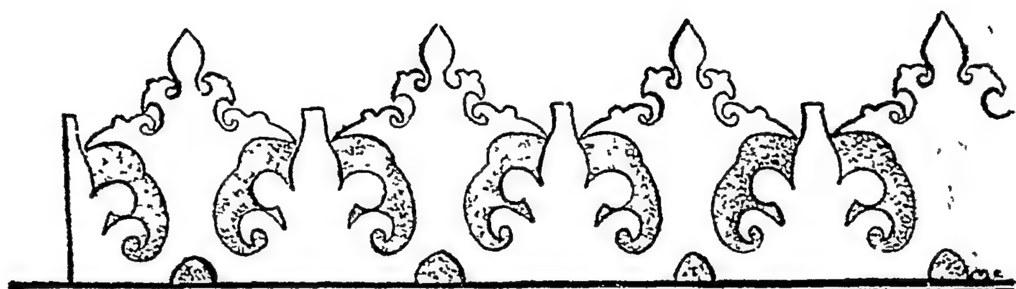
नवें अध्याय में यह बतलाया गया है कि गायन-मंडली किस प्रकार संयोजित की जावे। गान मंडली के तीन प्रकार बतलाए हैं, उत्तम, मध्यम और निकृष्ट। उत्तम गायक मंडली वह है जिसमें चार गायक उच्च श्रेणी के, आठ मध्यम श्रेणी के, बारह सुकंठ स्त्रियाँ, दो बांसुरी वाले तथा चार मृदंग वाले हों। मध्यम संगीत मंडली में इसकी आधी संख्या रह जाती है। निकृष्ट

में एक गायक, तीन उसके सहायक, चार सुकंठ स्त्रियाँ, दो बांसुरी वाले, तथा दो मृदंग-वादक होते हैं। इस अध्याय में यह भी लिखा है कि सम्राट अकबर के काल में "राग सागर" नामक एक पुस्तक लिखी गई है उसमें अनेक राग 'मान कुतूहल" के विरुद्ध है और वे अशुद्ध हैं।

दसवें अध्याय में अनुवादक के समय में प्रसिद्ध गायकों का उल्लेख किया गया है। शेख बहाउद्दीन, सुल्तान हुसेन शर्की, डालू डाढ़ी, लालखां उर्फ समुन्दर खां जिसे मियाँ तानसेन के बेटे विलास खां की लड़की व्याही थी, जगन्नाथ, मिश्री खां डाढ़ी, किशन सेन , भगवाना अंधा आदि का हाल लिखा है। अन्त में कुछ आप बीती भी लिखी है। अनुवादक ने लिखा कि १०७१ हिजरी में सम्राट किसी अपराध पर उस पर अप्रसन्न हो गए और उसने "गोशा नशीनी" अख्तयार कर ली। सन् १०७६ में पुनः बुलाना हुआ और उसे सम्राट् अपने साथ काश्मीर ले गए। यदि पृथ्वी पर स्वर्ग हो सकता है तो काश्मीर में ही। सम्राट ने उसे काश्मीर की सूबेदारी प्रदान की। "शासन" वास्तव में भक्ति का ही दूसरा नाम है। और का कोई दूसरा प्रकार इसको नहीं पहुँचता क्योंकि शासन जनता की सच्ची सेवा का नाम है। अनुवादक ने आगे लिखा है कि मुझे दो लड़ाइयाँ भी लड़नी पड़ीं। फिर रागों की फारसी नगमों से तुलना करके समानता स्थापन का प्रयत्न भी है।

संगीत शास्त्र के साथ साथ इस पुस्तक में मध्यकालीन भारतीय संगीत के इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है और आगे खोज के लिए सामग्री का संकेत भी मिलता है।





फकीरुल्ला खां

फकीरुल्ला ने अपने विषय में आपबीती शीर्षक में तथा पुस्तक में यत्र तत्र अनेक बातें लिखी हैं। परन्तु उसके विषय की केवल कुछ घटनाएँ ही ज्ञात होती हैं।

आपबीती से ज्ञात होता है कि फकीरुल्ला प्रारम्भ में किसी पद पर थे और हिजरी सन् १०७१ (ई० सन् १६६५) में बादशाह औरंगजेब को लोगों ने उनसे नाराज कर दिया। ६ वर्ष अप्रतिष्ठा में रहकर हिजरी सन् १०७७ (ई० सन् १६७१) में पुनः उनका बादशाह के सम्मुख बुलाना हुआ। आगरे में फकीरुल्ला की भेंट औरंगजेब से हुई और वे पुनः बादशाह

की सेवा में ले लिए गए। वे बादशाह के साथ काश्मीर की यात्रा के लिए गए। लाहौर तक बादशाह के साथ जाकर फिर वे उसके पूर्व ही काश्मीर रवाना हो गए। बादशाह का स्वागत फकीरुल्ला ने काश्मीर में किया।

शीत ऋतु में बादशाह तो लौट आए और फकीरुल्ला को काश्मीर का सूबेदार बना दिया गया।

फकीरुल्ला के कथन के अनुसार उसने दारदू का युद्ध लड़ा और निशाल, कासाल, होमियाल तथा गिलगिट को जीत लिया और इस प्रकार मुगल साम्राज्य की सीमा बढ़ाई।

अपनी इस विजय गाथा को सुनाने फकीरुल्ला काश्मीर से लौटकर बादशाह के पास आया। वहाँ पुरस्कृत होकर वह पुन काश्मीर गया और दो मास और काश्मीर का सूबेदार रहा।

बादशाह औरंगजेब के प्रति फकीरुल्ला को अत्यधिक आस्था थी। वह उसके धार्मिक स्वभाव का बहुत बड़ा प्रशंसक है। इस्लाम का जो जोश औरंगजेबी नीति में झलकता है, उसका फकीरुल्ला पूर्ण प्रतिपादक है। हिन्दुओं के विश्वास और भावनाओं के प्रति उसकी असहिष्णुता स्पष्ट प्रकट होती है। परन्तु औरंगजेब के शक्की स्वभाव पर फकीरुल्ला ने भी प्रकाश डाला है और उसने बतलाया है कि यात्रा के समय औरंगजेब केवल निजी सेवकों को ही साथ रखता था।

सम्राट औरंगजेब के दरबार में संगीत बहिष्कृत नहीं हुआ था। उनके

दरबार में अनेक गायक और बादक समाहृत थे। पुरुषनयन, सुखीसेन, मृदंगराय आदि बादक औरंगजेब के कृपापात्रों में से थे।

फकीरुल्ला ने बड़े गर्व से इस बात का उल्लेख किया है कि जो प्रदेश उसने जीते उसके अधिकांश निवासियों ने इस्लाम स्वीकार कर लिया।

परन्तु कला के क्षेत्र में फकीरुल्ला का साम्प्रदायिक आग्रह न था। उसने महाराज मानसिह की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।

संगीत के प्रति फकीरुल्ला की अत्यधिक अनुरक्ति और आस्था थी। उसने इस कला की आराधना में बहुत धन भी व्यय किया था। वह संगीत को ईश्वराधना का प्रधान साधन समझते थे और उनका कहना था कि जो कुछ गाया जाय वह ईश्वर भक्तों के दरबार में गाया जाय, ऐसा गायन पाप नहीं होता। औरंगजेब के समय में स्वयं सम्राट और उसके कट्टर अनुगामी लौकिक मनोरंजन के लिए संगीत हेय समझते थे ऐसा प्रकट होता है।

फकीरुल्ला के आश्रय में भी अनेक कलावंत रहते थे। हयात ख्वानी, शेख कमाल आदि का उसके आश्रय में होना स्वयं फकीरुल्ला ने लिखा है।

अनेक विदेशी संगीतज्ञों से भी फकीरुल्ला मिला था। फारसी गायन और भारतीय गायन की तुलना में उसे विशेष आनन्द आता था। अमीर खुसरो का भी वह इसी कारण बहुत बड़ा प्रशंसक था। अमीर खुसरो और गोपाल नायक की संगीत प्रतियोगिता के वर्णन में उसने खुसरो की भारतीय और फारसी संगीत की प्रवीणता की प्रशंसा की है। प्रसंग वश फकीरुल्ला

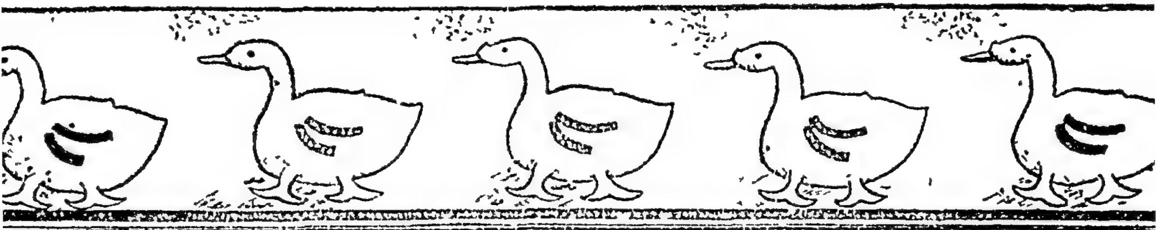
ने यह भी लिख दिया कि सुल्तान अलाउद्दीन अपने चाचा को विष देकर राजा बना था ।

जौनपुर के सुल्तान हुसेनशाह की संगीत प्रवीणता के उल्लेख के साथ साथ वे यह उल्लेख करना भी न भूले कि बहलोल लोदी से सुल्तान हुसेन पराजित हुए और जौनपुर दिल्ली में मिला लिया गया ।

फकीरुल्ला ने अनेक स्थलों और क्षेत्रों का वर्णन भी किया है, परन्तु सबसे अधिक वे प्रभावित हुए हैं ग्वालियर की भाषा और काश्मीर के सौंदर्य से । ग्वालियर की भाषा के विषय में उन्होंने लिखा है कि भारतवर्ष में यहां की भाषा सबसे अच्छी है । यह खंड भारतखंड में उसी प्रकार है, जिस प्रकार ईरान में शीराज । काश्मीर को तो उन्होंने भूस्वर्ग बतलाया ही है । काश्मीर के प्राकृतिक वैभव एवं सौंदर्य ने फकीरुल्ला के भावुक हृदय को आनन्द विभोर कर दिया ।

फकीरुल्ला ने अपने विषय में जो कुछ लिखा है वह केवल प्रसंगवश लिखा है । जितना प्रसंग विषय-प्रतिपादन के लिए आवश्यक था, उससे अधिक उसने कुछ नहीं लिखा । वह तो इसके लिए अधिक उत्सुक था कि यदि कोई उसकी पुस्तक को पढ़कर आनन्दित हो तो ईश्वर से उसके लिए स्वर्ग की प्रार्थना करे । आज तीन शताब्दियों के पश्चात् फकीरुल्ला के हेतु हमारी प्रार्थना कुछ अर्थ रखती है अथवा नहीं, यह तो हम नहीं कह सकते परन्तु राजनीति की व्यस्तता में से निकाला गया उसका समय हमारी पीढ़ी को उपयोगी होगा इसके लिए हम उनके आभारी अवश्य हैं ।

राग दर्पण



प्रस्तावना

प्रारम्भ करता हूँ कृपालु और दयावन्त परमात्मा का नाम लेकर।

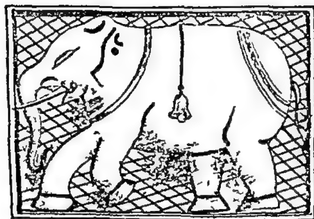
स्तुति का तराना प्रथमतः उस भक्त-प्रतिपालक महान संगीतज्ञ की सेवा में समर्पित करना उचित है जिसके कृपा रूपी संगीत के उपकरण आनन्द-शोकमय हैं, जिसने प्रलय और सृष्टि रूपी दो तारों वाली वीणा को निनादित कर विश्व का कल्याण किया और उसे अपनी गुण-गाथा से भर दिया।

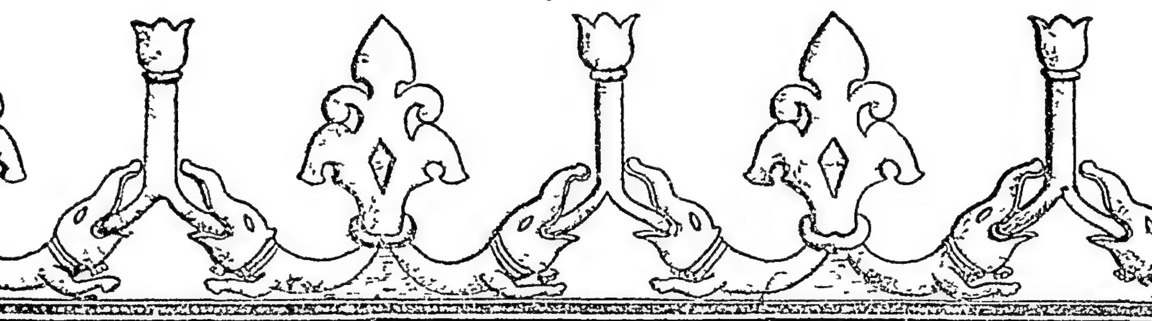
और प्रशंसा का गान उस वादक (रसूल पैगम्बर) के प्रति अर्पित करना उचित है जिसके हिदायत (मार्गनिर्देश) रूपी सितार की उच्च

ध्वनि ने भटकते हुओं को ठीक मार्ग पर आने की आकांक्षा उत्पन्न कर दी और उन्हें असीम भक्ति से लक्ष्य पर पहुँचा दिया।

(किसी ने कहा है) ईश्वर के रहस्यों की गाथा समुद्र में भी नहीं समा सकती। उसका बोध न ज्ञानी को है और न मूर्ख को। जिस प्रकार कि सूर्य के प्रकाश के लिए गिरगिट के समान ही चिमगादर भी अंधा है।

अतएव यह उचित है कि (ईश्वर और रसूल के) गुण वर्णन के दुस्तर कार्य से विरत होकर अपने उद्देश्य पर आ जाऊँ (अर्थात् पुस्तक प्रारंभ करूँ)।





विषय सूची

प्रथम सर्ग--पुस्तक रचने के कारण के विषय में।

द्वितीय सर्ग---रागों के विषय में।

तृतीय सर्ग---विभिन्न ऋतुओं में विभिन्न रागों को स्थिर करने के संबंध में, अर्थात् किस ऋतु में कौन सा राग या रागिनी गाए जाते हैं। साथ ही इसमें उन अक्षरों का भी उल्लेख है, जिनका प्रयोग गीत रचना के प्रारम्भ मे नहीं करना चाहिए; और ग्राम स्थिर करने का भी वर्णन है।

चतुर्थ सर्ग---स्वरों की जानकारी तथा गीतों के बोलों के विषय मे।

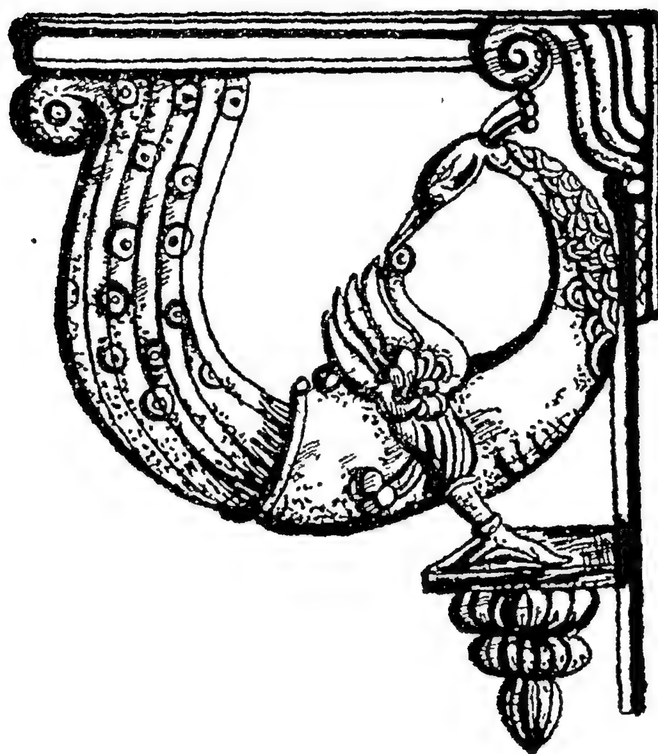
राजा मानसिंह ग्वालियर का शासक था और उसका संगीत शास्त्र विषयक ज्ञान तथा कीर्ति अनुपम है। कहते हैं कि सबसे पहले ध्रुपदका आविष्कार राजा मानसिंह ने किया था। उसके समय में अनेक अनुपम गायक थे। राजा स्वयं उनसे संगीत विद्या के विषय में वाद–विवाद करता था। उन प्रसिद्ध गायकों के नाम थे, नायक बख्शू, नायक पांडवीय, जो गंगा के किनारे से कुरुक्षेत्र स्नान करने आया था, महमूद लोहंग जिसका स्वर उच्चकोटि का था, तथा नायक कर्ण। ये सब नायक ग्वालियर में एकत्रित हुए थे।

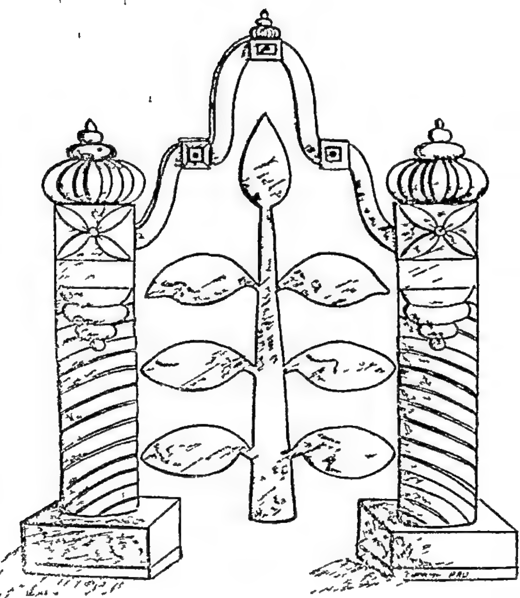
राजा के हृदय में यह बात उत्पन्न हुई कि ऐसे उच्च कोटि के नायक एक स्थान पर कठिनाई से बहुत समय पश्चात एकत्रित होते हैं। इसलिए यह उचित है कि रागों की संख्या तथा प्रकार विस्तार पूर्वक तथा व्याख्या सहित लिपिबद्ध कर लेना चाहिए ताकि संगीत के विद्यार्थियों को कठिनाई न हो। इस विचार से राग, रागिनी और उनके पुत्रों का विस्तार पूर्वक वर्णन करके ऊपर लिखी पुस्तक की रचना राजा के नाम से की गई।

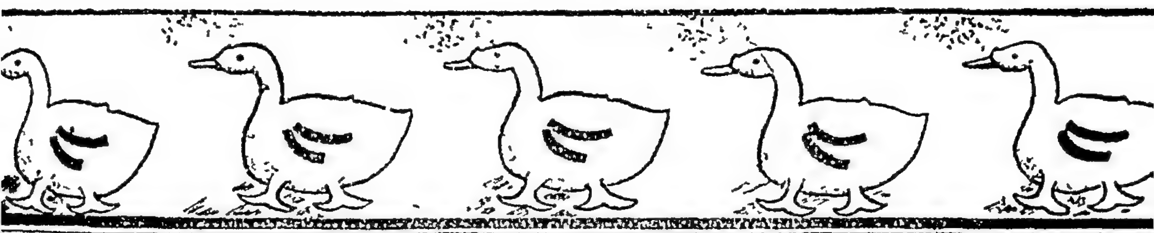
यह पुस्तक विश्वसनीय होने के कारण मैंने (मुझ दीन नें) उसका अनुवाद किया और अन्य आवश्यक बातें उसमें मिला दी जिसमें संगीत के विद्यार्थियों को भरत संगीत, संगीत दर्पण और संगीत रत्नाकर देखने की आवश्यकता न पड़े और उनको देखने का अभिप्राय इससे पूरा हो जाय।

इस छोटी सी पुस्तक का नाम मैंने "राग दर्पण" रखा। इसलिए कि एक छोटे से दर्पण में वन और पर्वत सभी प्रकट हो जाते हैं। इसमें रागों के

गाने के समय भी सब लिख दिए है और कुछ राग "नृत्यनृत्यी" तथा "चंद्रावली', नामक पुस्तकों के आधार पर भी लिख दिए हैं। यह विशेषता अन्य पुस्तकों मे नहीं है। अन्य किसी को इस प्रकार सब रागों के विषय में लिखना संभव नही क्योंकि अच्छे गाने तथा बजाने वाले इकट्ठे होने का अवसर नहीं आता है जिससे कि स्वयं चयन करके लिखा जा सके। यदि मुझे यह अवसर मिल जाय तो ईश्वर की कृपा से इस विषय को पूरा कर सकूंगा।







द्वितीय सर्ग

मानकुतूहल के अनुसार रागों का वर्णन

शुद्ध राग

भैरव—संपूर्ण, प्रातः काल गाया जाता है। मालकोस—और हिंडोल—यह वसन्त ऋतु में प्रभात काल में वीर, रौद्र और अद्‌भुत रस में गाना चाहिये। दीपक— संपूर्ण। श्रीराग— संपूर्ण, वीररस में खर्ज ग्राम पर ग्रीष्म ऋतु मे सांयकाल गाना चाहिये। मेघराग— यह भी खर्ज ग्राम पर गाना चाहिये।

वास्तव में राग छह प्रकार के होते हैं—

(१) शुद्ध राग (२) संकीर्ण (३) सालंग (४) सम्पूर्ण (५) षाढव और (६) ओढव।

शुद्ध से तात्पर्य ऊपर लिखे हुए छह रागो (भैरव, मालकौस, हिंडोल, दीपक, श्रीराग तथा मेघराज) से है।

सकीर्ण से तात्पर्य उनकी रागिनी और पुत्रो से है।

सालग उन गीतो को कहते है जिनका वर्तमान आचार्यों ने इनके अतिरिक्त आविष्कार किया है। मौलिक प्रतिभा युक्त व्यक्तियो द्वारा कुछ रागो को मिलाकर नवीन राग का आविष्कार करने को सालग कहने लगे हैं।

सम्पूर्ण राग उसे कहते है जिसमें सातो स्वर काम में लाए जावें।

पाढव राग उसे कहते है जिसमें छह स्वर सजाए जावें और ओढव पांच स्वर वाला राग कहलाता है।

रागिनी राग की पत्नी को कहते है और पुत्र राग-रागिनी के बेटे को कहते हैं। प्रत्येक राग के पांच रागिनियां और आठ पुत्र, होते है। परन्तु श्री राग के छ रागनिया और नौ पुत्र होते हैं।

रागनियो का वर्णन इस प्रकार है —

आचार्यों ने भैरव राग को सब रागो का मुखिया माना है और कुछ लोग श्रीराग को मुखिया मानते है। अत पहले भैरव का वणन किया जाता है।

इसकी रागनियां हैं —वगाली, भैरवी (सम्पूर्ण), बिलावल, इनको शृगार रस में गाना चाहिए। शृगार वह रस है जो प्रेम को उद्दीप्त करे। वकी और सहकी ये पांच रागनियां हुई।

इनके पुत्र हैं :—

वंगाल (संपूर्ण), जिसको आनन्द अवस्था में प्रातःकाल गाना चाहिए। वीर रस, रौद्र रस और अद्भुत रस में ग्रीष्म ऋतु में प्रभात के प्रथम प्रहर खर्ज ग्राम पर गाना चाहिए। अन्य पुत्रों के नाम है—मधुमाद, हर्ष, विशाख, ललित (संपूर्ण) ये प्रातःकाल वीर रस में गाना चाहिए। बिलावल और मधु भी प्रातःकाल गाने चाहिए।

य पाँच रागिनियाँ और सात पुत्र भैरव के समाप्त हुए।

अब मालकौस की रागिनियाँ तथा पुत्रों का वर्णन किया जाता है। रागिनियाँ हैं—गौंड, कन्नडी, शिवरी, अंधियाली तथा घनाश्री (ओढव)। पुत्र हैं—मारु, वाद, प्रबल, शतांक, चंद्रकोष, भोर, नंदन तथा खोखर।

हिंडोल की रागिनियाँ तथा पुत्र :—

रागिनियाँ—तैलंगी, देवगिरि (ओढव), यह चौथे प्रहर में गाई जाती है, वासन्ती, सिंदूरी तथा अभारी।

पुत्र ये है :—

मंगल, चंद्ररैन, सुभागा, आनन्द, विभास, जो संपूर्ण है और प्रातःकाल गाना चाहिए, परधन, बसखता (संपूर्ण) इसको प्रातःकाल गाना चाहिए।

दीपक की रागिनियाँ और पुत्र :—

पुत्र ये है—कोल, कुश, कनाराय, कनमल, कूलंद, लहल, चंपक हिमल।

रागिनियाँ—कुमोदनी, इसको खर्ज ग्राम पर सूर्यास्त के समय गाना चाहिए, पटमनरी टोडी (सपूर्ण) इसके सुनने में आनन्द प्राप्त होता है। गूजरी, इसे शृगार रस में प्रात काल गाना चाहिए, कम्पिली।

श्रीराग की रागिनियाँ और पुत्र —

रागिनियाँ—वीररारी सम्पूर्ण होती है तथा इसे शृगार रस में गाना चाहिए, कर्नाटकी, सामेरी, गौरी इसे वीर रस में दिन के चौथे पहर में गाना चाहिए,रामकली (सम्पूण) इसे हर समय गा सकते हैं। सिन्दूरी (सम्पूर्ण) इसे हेमन्त ऋतु में गाना चाहिए।

इसके पुत्र ये हैं—सैंधव, माधव, इसका समय सायकाल है, गौड (सम्पूर्ण) इसका समय सायकाल है, कुवर, गुणसागर, विकट तथा बरयाण, कुछ का मत है कि जब पानी बरस रहा हो उस समय सपूर्ण सध्या समय गाना चाहिए।

मेघराग की रागिनियाँ और पुत्र —

रागिनियाँ—मलारी प्रात काल गाना चाहिए, सोरठी(सम्पूर्ण)सायकाल को गाना चाहिए, आसावरी (सम्पूर्ण) इसे करुण रस में गाना चाहिए, कामक्षनी, मुकुटवाणी।

पुत्र—नर-नारायण (सम्पूर्ण) इसे वर्षाकाल मे गाना चाहिए। कुछ आचार्यों का मत है कि जब पानी बरसता हो, सूर्यास्त हो रहा हो, तब कानडा गाना चाहिए। सारग (सम्पूर्ण) दोपहर के पीछे गाना चाहिए, केदारा को आधी रात पर गाना चाहिए। गौंड, मलार, जालन्दर, सकर (सम्पूर्ण) प्रात काल गाना चाहिए।

कही रागनियों के दो बार वही नाम आये हैं। उदाहरण के लिए कहीं श्रीराग में भी गौड आया है, और मेघराग में भी। इसका कारण यह है कि उनके स्वर अलग अलग हैं।

जबकि रचयिता (मान कुतूहल) ने कानडा से प्रारम्भ कर यह बतलाया है कि कौन से राग मिलकर एक नया राग बना लेते हैं तब हम भी कानडा से ही प्रारम्भ करते हैं।

इस विद्या के आचार्यो ने कानडा को पाँच वर्गो में बाँटा है। शुद्ध कानडा को जब घनाश्री से मिला देते हैं, तो उसका नाम बागेश्वरी हो जाता हैं। और कानडा को जब मलार के साथ मिला देते है तो उसका नाम अडाना हो जाता है, मलार से नीचे वाली रागिनी को यदि कानडा से मिला देते हैं तो उसका नाम सहाना हो जाता है, और जब कानडा को घनाश्री और मंगलाष्टक में मिला देते है तो उसका नाम पूर्वी हो जाता है।

षाढव कामोद के भी पाँच भेद बतलाए गए है। गौंड और बिलाबल को जब मिला देते हैं, तब कामोद हो जाता है। अगर कामोद को शुद्ध सोरठ के साथ मिलाकर गाएँ तो उसको शुद्ध कल्याण कामोद कहते है। और सावंत के साथ कामोद को गाएँ तो उसको सावंत-कामोद कहते है। यदि कामोद को षटराग के साथ मिलाकर गाएँ तो उसको नाम तिलक-कामोद होता हैं।

मालश्री और भरत मूल पुस्तक (मान कुतूहल) में मलारी और मधु मालती की जगह आया है। सरस्वती, केदार और संकराभरण मिलाकर

गाएँ तो उसे मालरी कहते हैं। वह सम्पूर्ण राग है और प्रत्येक समय गाया जा सकना है।

यह जो ऊपर लिखा गया है कि मालरी और अमुक राग को मिला दें तो मालरी होता है, वह इस कारण से कि एक स्वर विशुद्ध मालरी रखता है और इसलिए नाम मालरी ही रहता है।

गौरी, मारवा और जयतिश्री को मिलाकर गाने से घनाश्री नाम हो जाता है।

धौलबरारी और शृंगार को मिलाकर गाने से जयतिश्री हो जाता है।

सम्पूर्ण बरारी को जयतिश्री से मिला दिया जाय तो उसको धौल-सिरी कहते हैं।

भीमपलासी, ललित और रिपु को मिलाकर गाने से रामकली उत्पन्न होती है।

गौट, अडाना और गौरी को मिलाकर गाने से कगली उत्पन्न होती है। कगली को ककरी भी कहते हैं। यह सम्पूण गाई जाती है और इसका समय सायकाल है।

देशी, टोडी और ललित को मिलाकर गाने से उसका नाम देवकली हो जाता है।

गूजरी और आसावरी को मिलाकर गाने से गौडकली नाम हो जाता है। सबसे पहले इसे गुरु गोरखनाथ ने गाया था।

टोडी, आसावरी, श्याम, घूल, गंधार और बरारी को मिलाकर गाने से उसका नाम षटसार होता है ।

केदार, कल्याण, कानरा, चतुश्री तथा श्याम को मिला दिया जाय तो मंगलाष्टक उत्पन्न होता है ।

आसावरी, पूर्वी, भैरव, देवगंधार, इन चारों को मिलाकर गाने से चौरांष्टी नाम हो जाता है ।

नट को नौ वर्ग में इस प्रकार विभाजित किया है :—वागेश्वरी, पूर्वी, मधुमाद को मिलाकर गाने से यह शुद्ध नट कहलाता है । यह सम्पूर्ण है और सायंकाल को गाना चाहिए । जब नट को कल्याण के साथ मिलाते है तो उसका नाम नट-कल्याण हो जाता है । जब नट को कानरा के साथ मिलाते है तो उसका नाम नट-कानरा हो जाता है, और जब नट को केदार के साथ मिलाते है तो उसका नाम नट केदार हो जाता है । यह सम्पूर्ण राग जब हमीर के साथ मिलाते है तो हमीर-नट नाम हो जाता है । जब नट को मलार के साथ मिलाते हैं तो उसका नाम नट-मलार हो जाता है । नट के साथ कामोद का मिश्रण करने से भी कामोद-नट हो जाता है । यह भी संपूर्ण है और प्रातःकाल गाना चाहिए । यह नौ नट इस प्रकार लिखे हैं । लंकध्वनि, मधु माधवी, बरारी और संकराभरण को मिलाने से नट-नारायण उत्पन्न होता है । रागसागर में इसको और पंचम को छय रागों में माना है । उसमें इसका वर्णन मालकौश और मेघ के बजाय किया गया है ।

कुम्भारी, पूर्वी, टोडी को मिलाने से उसका नाम राजनारायण-नट होजाता है। घूल, मधुमाद, धनाश्री, कल्याण, कामोद, केदारा, अहीर और कानरा को जब नट के साथ मिलाकर गाते हैं तो उसको करजा कहते हैं और इसे बलदेव ने गाया है।

श्रीराग, मालव और नट—इन तीनो को मिलाकर गाने उसका नाम करजबिहारी होता है।

अश अर्थात् वादी विभास व गूह् को इकट्ठा करना, विभास और असीनाश ग्रह को मिलाकर गाते हैं, तो उसका नाम सरस्वती होता है।

गौरी और मालव को मिलाने से पूर्वी उत्पन्न होती है। यह भी सम्पूर्ण है और आनन्दमय अवस्था में गाना चाहिए। दिन का चौथा प्रहर इसके गाने का समय है।

जयति बिहारी, मारू को जब धनाश्री के आधे अश में मिलाते हैं तो उसको वुघरा कहते हैं।

पूर्वी, गौरी और श्याम को मिलाकर गाने से फरोदस्त (नीचे का) कहते हैं। इसको अमीर खुसरो ने निकाला है।

तवंण, बिहारी और मारू को एक साथ मिलाकर गाते है तो उसका नाम मनोहर-गौरी होता है।

मलार और मालरी को मिलाकर गाने से मधुमाद हो जाता है। यह औढव राग है और प्रात काल गाना चाहिए।

नट-नारायण, जयतिश्री और शंकराभरण को मिलाकर गाने से त्रिवेणी हो जाता है।

बिलाबल और केदार को मिलाकर गाने से शंकराभरण कहलाता है। इसे सबसे पहले महादेव जी ने गाया था।

जयतिबिहारी और केदार को मिलाकर गाने से लंकध्वनि उत्पन्न होता है। इसे पहले पहल हनुमान जी ने गाया था।

देवगिरी, पूर्वी, गौरी, गौड—इन चारों को मिलाकर गाने से प्रभु नाम होता है।

मालरी और मलार को मिलाने से खम्भावती नाम हो जाता है। इसे सबसे पहले भरत ने गाया था।

देशी आसावरी और षट मिलाकर गाने से अन्धावती नाम हो जाता है।

देशकली, तोड़ी और त्रिवेणी को मिलाकर गाने से बरारी होता है। यह संपूर्ण है। यह पहले तिरहुत में गाई गई थी और वहीं से यह निकली।

मारू, धौल, धनाश्री और खम्भारी—इन चारों को मिलाने से पट-मंजरी हो जाता है।

मारू, केदारा, जयतिश्री और सोरठ को मिला दिया जाय तो उसका नाम कन्हैया हो जाता है। भरत-संगीत में इसका नाम षटस्वर लिखा है।

भैरव, कानरा, श्रीराग सारंग को बराबर मिला देने से टंक हो जाता है।

सोरठ, मलार और केदार को मिला देने से नाकधुन हो जाता है। नागलोग में यह प्रचलित हुआ।

देशकली, कल्याण, गूजरी और श्याम को मिलाकर अमेरी हो जाता है। इसका समय सायकाल है। यह सबसे पहले कान्ह (श्रीकृष्ण जी) ने गाया था।

शकराभरण, सोरठ, अडाना—इनको मिलाकर गाया जावे तो उसका नाम अवहस मगल हो जाता है।

नेकपाल, पचम गधार, गूजरी और भैरवी को मिला देने से सोरठी कहलाती है। श्रीराग और मालव को मिला देने से दुराज हस (तित्तर हस) हो जाता है। इसको भरत ऋषि के सामने नारद ने गाया था।

टक, सोरठी, गधार, मालरी, भीमपलासी को मिलाकर गाने से शीशमोद हो जाता है।

धौल (धवल) और गौड को मिला देते हैं, तो सोहनी नाम हो जाता है।

टोडी और पटराग को मिला देने से देसी हो जाता है। इसमें करुण रस का गान गाना चाहिए तथा यह सदा गाया जा सकता है।

सारग, पूर्वी और सोरठ को मिला देने से देवगिरी नाम हो जाता है, इसे देवता गाया करते हैं।

शुद्ध शंकराभरण तथा कानडा को मिलाकर गाएँ तो देवसाख नाम हो जाता है।

गौरी, टंक और बुधंस को मिलाकर गाएँ तो श्रीराग ही जाता है।

सारंग, नट, मलार, बिलाबल और देवगिरि को मिलाकर गाएँ तो विश्वजीत हो जाता है।

लंकध्वनि, सोरठी और बिलाबल को मिलाने से शंकरमणि बनता है। पुस्तकों में लिखा है कि इसको महादेव जी के सिवाय और कोई नही जानता ।

बिलाबल और सारंग जब एक जगह मिला दिया जाय तो उसे बिलाबली कहते है। बिलाबली को सोहराई भी कहते है।

सोहराई और सोरठी को यदि मिलाया जाय तो उसका नाम कामोदिनी हो जाता है।

कल्याण, केदारा और बिलाबल को यदि मिला दिया जाय तो उसको यमन कहते है ।

केदारा, कल्याण, और यमन को मिलाकर गाया जाय तो उसको हमीर कहते है। सबसे पहले यह गाना गौरीनाथ ने गाया था।

सैधव, आसावरी, भैरव और देवगिरी को यदि मिलाकर गाया जाय तो उसे गंधार कहते है।

कल्याण, भाकरा और कानरा को मिलाकर गाने से कनाहल हो जाता है। इसे भी भरत ने गाया।

शंकराभरण, श्रीराग और मालरी को मिलाकर गाने से श्रीरमण हो जाता है।

बिलावल, पूर्वी, केदारा देवगिरी और माधव पाँचों रागों को मिलाकर गाने से उसका नाम "कल्य" हो जाता है। यह जाडे की ऋतु में करुण रस में गाना चाहिए।

रामकली, श्याम, गधार और मगल को मिलाकर गाने से गूजरी हो जाता है।

जयती, गौरी, श्रीरमण तथा बरारी को मिलाने से विचित्र हो जाता है।

नट नारायण, कानरा और मलार को मिलाकर गाने से हिंडोल राग हो जाता है।

नाट्याचार्य भरत ने लिखा है—हर एक राग जिसमें रागिनी शामिल न हो, अपने एक एक मुख से पचमुखी महादेव ने गाया और दीपक को उनकी पत्नी पार्वती ने उत्पन्न किया।

यदि वसत, सावत, कल्याण और कामोद को मिलाकर गाएँ तो उसको मेघराग कहते हैं।

रामकली, गूजरी, देवकली, पचम और अनगपाल को मिला दें तो भोला बन जाता है।

सम्पूर्ण मालरी, कुम्भारी तथा सरस्वती को मिलागर गाएँ तो दरबारी नाम होता है।

घनाश्री को सोरठ के साथ मिला दिया जाय तो कन्हारी नाम होता है। इसे सर्व प्रथम गणेश जी ने बनाया।

नट नारायण, मलार शुद्ध, हमीर और मधुवन को मिलाकर गाएँ तो उसको मधुमंथन कहते है। इसे धवी भी कहते है। यह कान्ह ने सबसे पहले गाया था।

ललित, विभास, वसंत तथा देसाख और हिंडोल को मिलाकर गाएँ तो उसे बड़ा (अकरम) पंचम कहते हैं।

ललित और विश्वजीत को मिलाकर गाएँ तो उसे पंचम कहते हैं।

नट, हमीर और हीर को मिलाकर गाएँ तो उसका नाम होता है गौर राग। इसका निकास गुजरात से है।

केदारा, गौरी और श्याम को मिलागर गाएँ तो उसका नाम भाखड़ा होता है। इसे सायंकाल गाना चाहिए।

देवगिरी और मलार को मिला दें तो उसका नाम नट सारंग होता है।

देवगिरी और शुद्ध को मिलाकर यदि गाएँ तो सारंग हो जाता है।

बिलाबल और भाखड़ी को मिला दिया जाय तो उसका नाम सोहा हो जाता है।

ताहती, टोडी, मुल्तानी, महारजिनी, गौरी, छायानट, ये दिन के अन्तिम भाग में गाने चाहिएँ। एमन कल्याण, एमन विलावल, एमन केदारा, एमन सारग, खेम कल्याण, पूरिया, मुलियारी-षाडव, मौन ध्यान, गोरा, श्याम सपूर्ण सायकाल के समय गाए जाने चाहिए। बाघी, गौरी, दिन के अत में गाना चाहिए। अभेदी-औडव सायकाल गाना चाहिए। शालग, नट सूर्यास्त समय गाना चाहिए। तुजुर्ग, टोटी, इसमें फारस और ईराक के स्वर लगाए जा सकते है, और हुसैनी टोडी को दरगा-हुसैनी में मिलाया जा सकता है।

सावती, लीलावती षाडव, मानशाही, कल्याण इनके गीत ग्वालियर वाले राजा मान ने लिखे है।

देशकार गौरी, विभास को जब मिला देते है तो तवंण नाम हो जाता है। इसी का नाम सावती भी है। यह सपूर्ण राग है और सायकाल गाया जाता है।

जयति सम्भावती, जयतिश्री, अहीरी, टक और बरारी को मिलाया जाए तो हरगौरी होता है। यह गीत गुजरात देश में गाया जाता है।

मालीगोरा, घनाश्री, पूरिया, भोला और बाघी तथा असावरी को मिलाकर गाने से उसका नाम मालीगोरा होता है।

टोडी, करज, शालग को जय गौरी में मिलाते है तो उसका नाम देशकार होता है। यह सपूर्ण राग है तया दोपहर के समय शिशिर ऋतु में गाया जाता है। यह हिंडोल वर्ग का है।

वसंत ऋतु जैजैवंती, पंचमराग, षटराग, मारवा, सारंग और सावंती को मिलाकर गाएँ तो वह मालकोश हो जाता है।

मैंने भी चंद राग इसी तरह से निकाले है। जयतिश्री में हिंडोल और केदारा को मिला दिया और उसका नाम जयति वसंत रख दिया। और जयतिश्री, कल्याण, पूरिया, घनाश्री और वसंत को मिला दिया और उसका नाम पीसिघवी रख दिया। गोदाई, गौर, सारंग भाखडा, सोहू, बिलाबल देवगिरी और नट को मिलाकर उसका नाम मैंने सुन्दरावती रखा। अडाना और केदारा को मिलाकर उसका नाम अडान-केदारा रखा। श्याम और सारंग को मिलाकर उसका नाम मैंने श्याम-सारंग रखा।

यह बात याद रखनी चाहिए कि यदि कोई व्यक्ति चाहे कि कुछ रागों को मिलाकर एक नया राग पैदा करे तो उन रागों को इस प्रकार घुला मिला देना चाहिए जैसे कोई व्यक्ति कुछ डोरियो को अलग अलग रंग कर एक रस्सी बट देता है। यदि ये राग आपस में मिलें और उसका कोई नाम न रखा जा सके तो उसको सागर कहेंगे।

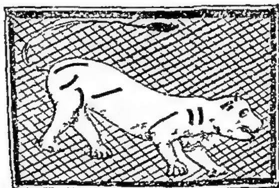
अगर इस बात का प्रमाण पूछा जाए तो मै यह कहूँगा कि गायनाचार्यो के निकाले हुए राग ही इसके प्रमाण हैं। सब राग एक दूसरे में समाए हुए मालूम होते है। यह बात मै 'मानकुतूहल', 'रागसागर' और 'राग प्रकाश' के आधार पर लिख रहा हूँ। मै अनुवादक से अधिक नही हूँ और जो कुछ मैंने लिखा है यदि वह आपको पसंद आए तो कृपा करके मुझे लिखें।

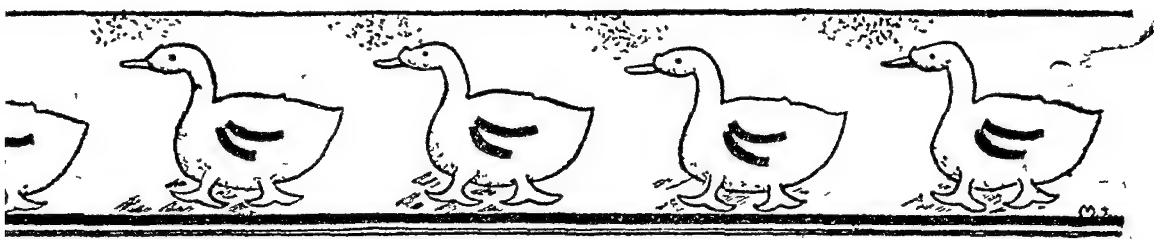
जानने वाले इस बात को जानते हैं कि गान विद्या सब विद्याओं से कठिन है। बूअलीसीना ने जिस विद्या को पढा उसमें दक्षता प्राप्त की और कहा कि आखिर मुझमें पुरुषत्व है, लेकिन जब गायन पर आया, जो संगीत विद्या का आधार है, तो अपनी अयोग्यता को स्वीकार किया और कहा कि मैं इस विद्या के आगे महत्त्वहीन (नपुन्सक) हूँ। इसने इस बात को फारसी की शेरों में लिखा है।

"भूमंडल से लेकर शनिमंडल तक, मैंने कठिनतम बातों को सरल कर लिया, परन्तु जब मेरे दिल में गान विद्या सीखने का विचार आया तो मैं ऐसा असमंजस में पड गया जैसे कीचड में गधा फँस जाता है।'

जब इतने बडे विचारक की यह अवस्था हो तो मुझ दीन हीन की क्या शक्ति है कि इस अनुपम विद्या के विषय में स्वयं कोई गीत लिखूं और कहे कि मैं भी कुछ हूँ। मेरी दशा तो इस मिसरे के अनुसार है —

"हमें यह ज्ञान हुआ कि हम कुछ नहीं जानते।"





तृतीय सर्ग

इस सर्ग मे ऋतुओं का वर्णन, ऋतुओं में राग तथा रागनियों व पुत्रों के गाने का स्थिरीकरण, उन अक्षरों का वर्णन जो गीत के आरम्भ में नही लगाए जाते है, तथा उनके गुण और अवगुण, प्रत्येक ऋतु तथा समय में ग्राम जिन पर गीत गाए जाते है, तथा गीत गाने के समय व ऋतु का वर्णन है।

इस पुस्तक के पाठकों तथा संगीत विद्या के जिज्ञासुओं को ज्ञात हो कि देवताओं ने इस विद्या को उत्पन्न किया और एक वर्ष में षट् ऋतुओं को स्थिर किया। एक एक ऋतु दो दो महीने की होती है। इन ऋतुओं के

ऊपर षट्राग स्थिर किए। एक ऋतु में एक राग अपनी रागिनी तथा पुत्रों सहित गाया जाता है। प्रत्येक ऋतु तथा समय के एक एक ग्राम स्थिर किए जाते हैं ।

देवताओं ने यह काम नायकों द्वारा किया। इन नायकों में बैजू नायक और गोपाल नायक के समान नायक सम्मिलित हैं।

स्थिर समय में जो राग गाया जाता है सुनने वाला पर उसका पूर्ण प्रभाव पडता है और यदि इस नियम को भग किया जाय तो प्रभाव मिट जाता है।

इस विद्या के ज्ञाताओं को यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि जो कुछ गाएँ, ईश्वर भक्तों के दरबार में गाएँ, फिर गाना अच्छा हो या बुरा, उसका प्रभाव बढ जायगा इस कारण से कि उसका समय अच्छा कटेगा और वह हिसाब में नही जुडेगा। ऐसा गायन पाप नही, एक फारसी कविता, (नज्म) है–

"परमात्मा के भक्त है वे रहट की ध्वनि से भी तन्मय हो जाते है। और वे रहट की तरह नाचते हैं और रहट की तरह अपने ऊपर रोना प्रारम्भ करने लगते हैं।"

राग का प्रभाव यह है कि दुष्ट और सन्त, छोटा और बडा, वृद्ध अथवा युवक, जो कोई सुने वह आनन्द को प्राप्त हो। इस लक्ष्य को अपनी दृष्टि में रखकर ऋतु और उसके राग कहता हूँ।

षट् ऋतुएँ इस प्रकार हैः--वसंत ऋतु अर्थात् चैत और वैसाख, ग्रीष्म ऋतु जेठ और अषाढ़, पावस सावन और भादों, शरद ऋतु--आसोज (क्वार) तथा कार्तिक, हेमन्त ऋतु अगहन और पौष, शिशिर माह तथा फाल्गुन।

षट् ऋतुओं का वर्णन करने के बाद उनमें राग रागनियों एवं पुत्रों का वर्णन किया जाता है। वसंत-ऋतु मे हिंडोल राग गाया जाता है। इसकी रागनियाँ और पुत्र ऊपर लिखे जा चुके हैं। ग्रीष्म ऋतु का राग दीपक है। पावस का राग मेघ है और शरद का श्रीराग है। हेमन्त का मालकोष तथा शिशिर का भैरव राग है ।

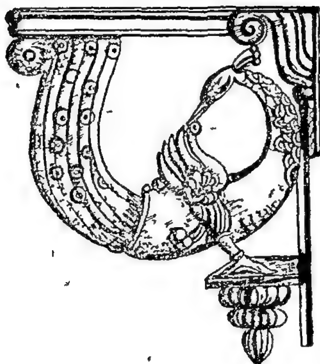
हेमन्त में खर्ज ग्राम, ग्रीष्म में मध्यम ग्राम, पावस में गंधार ग्राम । प्रातःकाल खर्ज ग्राम, दोपहर मध्यम ग्राम तथा सायंकाल गंधार ग्राम। दूसरे ग्राम व समय , संभवतः संध्या को, प्रातः व दोपहर को नियत किए गए है।

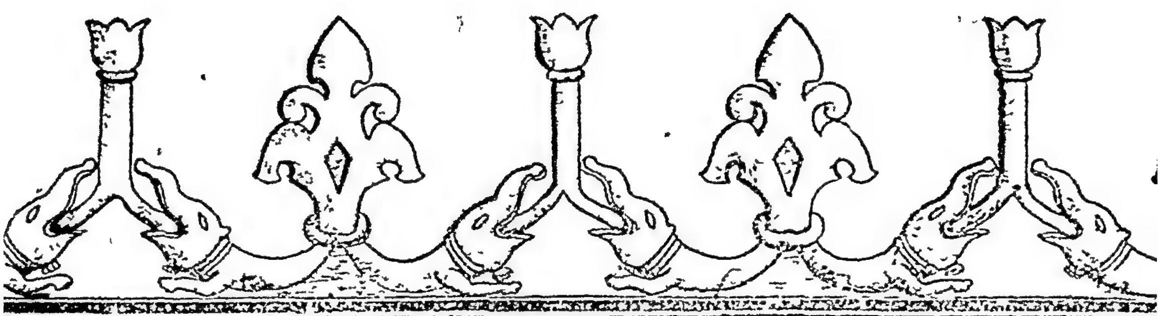
दूसरा नियम यह है कि गीत, कवित्त व ध्रुवपद आदि के आरम्भ में आठ अक्षर लाने का निषेध है। ये शुभ नहीं समझे जाते है- ह, ज, ख,न, घ, र, ध, म ।

इसके अतिरिक्त चार औगुन भी निषेध है।

(गण संबंधी दो पंक्तियाँ पढ़ी नहीं जा सकी है।)

नायकों ने यह सिद्धांत निश्चित किया है।





सर्ग

स्वरों की जानकारी और गीतों का वर्णन, जिनमें राग वांधे जाते हैं। सात स्वर के सात नाम--हर स्वर एक जानवर की वोली से लिया गया है। प्रत्येक स्वर के उत्पन्न होने का कारण, वह कहाँ से आता है व कहाँ जाता इसके बाद किन रागों में पहुँचे और वहाँ से गले में खराश पैदा करे। मनुष्य के कौन कौन से अंग से कौन कौन सा स्वर उत्पन्न होता है। प्रत्येक स्वर और उसका विकास, गीत के आवश्यक विषयों का वर्णन।

प्रत्येक स्वर कहाँ से चलकर कहाँ जाता है यह शास्त्रोक्त रीति से लिखते हैं। गायक स्वर को उसके उद्गम से लेकर ऊपर को घुमाता है और उसको पूर्ण रूप से विकसित कर देता है।

ऐसा कहा जाता है कि प्रकृति ने हर एक मनुष्य में पेट से लेकर गले और कपाल तक बाईस नस बनाई है। नाभि, जो वात (वायु) उत्पन्न होने का स्थान है, से तीव्र और कोमल स्वर उत्पन्न होता है और वहाँ से उठकर पंचम्, षष्टम्, नवम् और दशम् इस प्रकार बाईस तक पहुँचते हैं।

इन अठारह स्थानों के सात राग बना दिए गए हैं। उनका वर्णन निम्न प्रकार है —

वह स्वर जो मयूर से लिया गया है, चौथी नस से निकलता है। नासिका से कंठ तक, कंठ से वक्ष तक, वक्ष से तालू तक, तालू से जिह्वा तक, जिह्वा से दांतों तक ये छः स्थान षड्ज के होते हैं।

वह स्वर जो चातक की पुकार से लिया गया है सातवीं नस से लेकर दसवीं नस तक पहुँचता है तथा नाभी से कंठ तक और कंठ से कपाल तक पहुँचता है। इसका नाम ऋषभ हो जाता है।

वह स्वर जो अजा से लिया गया है, नवी नस से लेकर तेरहवीं तक पहुँचता है। नाभी से लेकर कंठ तक और कंठ से ललाट तक, ललाट से मुख तक पहुँचता है। इसका नाम गंधार है।

वह स्वर जो कुञ्ज (क्रौंच) से लिया गया है, तेरहवी नस से सोलहवी नस तक पहुँचता है तथा नाभि से वक्षस्थल तक जाता है। इसको मध्यम कहते हैं।

वह स्वर जो कोकिला से लिया गया है, सत्रहवी नस तक पहुँचता

है तथा नाभि से लेकर पार्श्व (कटि से ऊपर के भाग) तक तथा पार्श्व से लेकर कपाल तक, कपाल से वक्षस्थल तक पहुँचता है—इसको पंचम कहते हैं ।

वह स्वर जो अश्व से लिया गया है, आठवी नस से बाईसवीं नस तक पहुँचता है । यह स्वर नाभि से लेकर तालू तक, तालू से कंठ, कंठ से कपाल; कपाल से वक्षस्थल तक पहुँचता है । इसका नाम धैवत है ।

वह स्वर जो हाथी के स्वर से लिया गया है, वह बाईसवी नस से तेईस (तीसरी) नस तक पहुँचता है तथा नाभि से कंठ तक, कंठ से कपाल तक जाता है । जितने स्वर है, सब इसमें सम्मिलित है । इसे निषाद कहते हैं ।

ये सात स्वर तीन प्रकार के होते है । निषाद बाईस से आगे नही बढता है ।

अब गीत रचना का वर्णन करते हैं । जिस प्रकार फारसी कविता में मसनवी, कसीदा, गज़ल, रुबाई, मुखम्मस, मुसज्जा, कता और मुस्तजाद आदि होते है, इसी तरह से हिंदी भाषा मे जो कुछ गीतों से बांधा जाता है और जो कुछ गायक गाते है, वह तीन प्रकार का होता है । जिनमें देवताओं की कीर्ति का वर्णन होता है और जिनमें राजाओं का यशोगान होता है । यदि गीत "चंद्र प्रकाश" हो, संभवतः वह एक घडी में समाप्त हो जाए । दूसरे को सूर्य प्रकाश कहते हैं । सूर्य प्रकाश और चंद्र प्रकाश, सूर्य और चंद्र की कलाओं के अनुसार बांधा जाता है । चंद्र प्रकाश में सोलह कला मानी

गई हैं तथा सूर्य प्रकाश में बारह। कला के अनुसार ताल उत्पन्न होती है। स्वर में चार बार ताल आती है और अनेक पदों की बनती है। ताल और राग चद्रमा के समान हो जाता है।

मार्गी उन गीतों को कहते हैं जिन्हें देवता गाते हैं। उसका वर्णन वाणी से होना कठिन है। ये उत्तरी भारत में अत्यंत अल्प हैं परन्तु दक्षिणी भारत में जहाँ देशी राग और गीत प्रचलित नहीं है, वहाँ जो कुछ गाया जाता होगा वह मार्गी के ढंग पर गाया जाता होगा।

कुछ विश्वसनीय लोग दक्षिण से आकर मुझसे मिले। उन्होंने मुझसे कहा कि दक्षिण में भी मार्गी गीत गाने वाले नहीं रहे, जो कुछ हैं वे राग और गीत देशी ही गाने लगे हैं।

चार पंक्ति वाला पद देवताओं की कीर्ति में बनाते हैं। नायकों ने स्थिर कर दिया है कि अमुक पद का अमुक देवता है। वहाँ गीतों में ताता तिल्ली (तराना) भी गाया जाता है। गीतों के स्वर तो होते हैं, किन्तु वे अर्थ रहित होते हैं। इनमें देवताओं की प्रार्थना की जाती है अथवा राजाओं का यशोगान किया जाता है। अथवा किसी पशु की बोली की नकल होती है। इसमें नव रस प्रयोग में लाए जाते हैं। तात्पर्य यही होता है कि सुननेवालों को आनन्दित किया जाय।

मार्गी भारत में तब तक प्रचलित रहा जब तक कि ध्रुपद का जन्म नहीं हुआ था। कहते हैं कि राजा मानसिंह ने उसे पहली बार गाया था जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है। इसमें चार पंक्तियां होती हैं और

सारे रसों में बांधा जाता है । नायक मन्नू, नायक बख्शू और 'सिह' जैसा नाद करने वाला महमूद तथा नायक कर्ण ने ध्रुपद को इस प्रकार गाया कि इसके सामने पुराने गीत फीके पड़ गए । इसके दो कारण थे । पहला यह कि ध्रुपद देशी भाषा में देशवारी गीत था तथा मार्गी में संस्कृत थी । इसलिए मार्गी पीछे हट गया और ध्रुपद आगे बढ़ गया । दूसरा कारण यह था कि मार्गी एक शुद्ध राग था और ध्रुपद में सब रागो का थोड़ा थोड़ा लिया गया है ।

मानसिंह के इस अद्भुत आविष्कार के लिए गायन-शास्त्र सदा उनका आभारी रहेगा । आज लगभग दो सौ वर्ष हो चुके है । कदाचित आगे चलकर कोई गायक राजा मानसिह के समान गायन शास्त्र में प्रवीण हो तो परमात्मा की अपार लीला से ध्रुपद जैसे अन्य गीत की रचना कर सके । परन्तु मस्तिष्क में अभी तो यही विचार आता है कि ऐसा होना असंभव है ।

इस बात का मेरा प्रमाण यह है कि मार्गी की भाषा संस्कृत है और ध्रुपद की देशी ।

सुदेश से हमारा मतलब है ग्वालियर, जो आगरा (अकबराबाद) के राज्य का केन्द्र है व जिसके उत्तर में मथुरा तक, पूर्व में उन्नाव तक, दक्षिण में ऊँज तक तथा पश्चिम में बारॉ तक । हिन्दुस्तान में इतने बीच की भाषा सबसे अच्छी भाषा है । यह खंड भारत में उसी प्रकार है जिस प्रकार ईरान में शीराज ।

जो गीत दक्षिण में गाया जाता है, वह द्राविड़ भाषा में है तथा छंद

उसका नाम है। उसमें तीन से लेकर चार पक्तियाँ तक होती हैं। इसमें ईश्वर प्रार्थना होती है।

जो तैलगी तथा कर्नाटकी में गाया जाता है, उसमें प्रेमी तथा प्रेमिका का वार्तालाप होता है।

जो कुछ बगाल में गाया जाता है उसको बगला कहते हैं।

इसमें भी प्रेम की चर्चा होती है।

जो कुछ जौनपुर में गाया जाता है उसको चुटकुला कहते हैं। इसमें दो पक्तियाँ होती हैं। इसमें तुक होती है परन्तु काफिया नही होता तथा परन उस स्थान को कहते है जहा पर कि चोट पूरी पडे। यदि दो पक्तियाँ पूरी नही हो तो तीसरी पक्ति जोड देते हैं। इसमें प्रेम की चर्चा होती है, वियोग का क्रदन होता है। विनय होती है तथा वीर रस होता है। इसमें रण का चुटकुला होता है।

चुटकुले की सात तालें स्थिर हैं। इसे झमरा ताल पर बाधना चाहिए और गाना चाहिए। यह सुल्तान हुसेन शर्की ने निकाला जो जौनपुर का बादशाह था। यह सुल्तान दिल्ली के बादशाह बहलोल लोदी से लडकर पराजित हुआ और अपने राज्य तथा दौलत को नष्ट कर दिया।

पाठानीनामा (फारसी की ऐतिहासिक पुस्तक) में इस तरह से उसके गीतों के नाम आए हैं—१ कौल, २ तरान, ३ ख्याल, ४ नक्श, ५ निगार, ६ बसीत, ७ तल्लाना, ८ सुहिला। अमीर खुसरो, पवित्र करे परमात्मा उनके

भेदों को, ने इन रागों को खूब चमकाया। गाते गाते चुप हो जाना और एक बोल को बार बार दोहराना, यह दो लय (तर्ज) अमीर खुसरो ने फारसी और हिन्दुस्तानी मिलाकर उत्पन्न की थी और फल स्वरूप गीत अधिक आनन्ददायक हो गया। फारसी का कौल हिन्दुस्तानी गीत के बराबर है। जिस समय नायक गोपाल अलाउद्दीन बादशाह के राज्य काल में देहली आया था अमीर खुसरो ने उसके गीतों के मुकाबले में कौल तैयार किए थे। इसकी कहानी इस प्रकार प्रचलित है कि गोपाल कुरुक्षेत्र में स्नान करने आया था। थानेश्वर में पानी का एक बड़ा जलाशय था। अलाउद्दीन बादशाह ने उसके ईंट और चूने को हटाकर उसे साफ करा दिया था। यहाँ महाभारत भी हुआ था। कहते हैं कि उसे चार हजार वर्ष हुए। इसमें कई करोड़ आदमी मारे गए थे। सौ लाख का एक करोड़ होता है और सौ हजार का एक लाख। हिन्दुओं का ऐसा विश्वास है कि जो मनुष्य वहां पर्व के दिन वर्ष में एक बार स्नान करेगा वह सारे पापों से मुक्त हो जायगा।

फारसी का एक शैर है जिसका अर्थ है, "यदि काया के धोने से मन शुद्ध हो जाए तो धोबी सबसे बड़ा सन्त हो।"

फारसी में एक और मिसरा है जिसका अर्थ है "एक बेवकूफ ने कहा और एक गधे ने विश्वास कर लिया।"

यही हाल हिन्दुओं का है, जो कुछ ब्राह्मण लोग कहते है, वही हिन्दू मान लेते हैं। बुद्धि से काम लेना ही नहीं जानते। यदि हिन्दुओं में अकल होती तो परमात्मा को छोड़कर पत्थर को नही पूजते।

सारांश यह कि पूर्व कथित नायक वहाँ स्नान करने आया। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी का सुल्तान जलालुद्दीन ससुर और चचा था। वह एक सज्जन पुरुष था। जब रमजान के महीने में रोजा रखे हुए था तथा कुरान शरीफ पढ रहा था, उस समय उसे जहर दिया गया था। इसका पूरा वर्णन इतिहासो में है। जलालुद्दीन को शहीद करके अपने आप राज्य का मालिक बन बैठा था।

स्वर्गवासी अमीर खुसरो की विद्या की ख्याति दुनिया के इस छोर से उस छोर तक फैली हुई थी। नायक गोपाल उनका नाम सुनकर डडा बाधकर आया। डडे से मतलब एक लकडी से है जो लबाई में एक हाथ और दो अगुल होती है। कुछ लोग कहते है कि एक बालिश्त और दो अगुल होती है और उसे पगडी पर (चोट) एक गहने की तरह पहिनते है। उस लकडी को सिर पर रखने का जो मतलब होता है वह निम्नलिखित है — ईरानी में ऐसी लकडी को दुमगच और हिदुस्तानी में कजगाह (कचकुला) कहते है। हकीम सोजनी ने एक शेर भी कहा है जिसका अर्थ है —

"य एक प्रकार के घुघरू होते है। यदि इन्हें कोई बाधता है तो उसे मुकाबला करना पडता है और गायको की लडाई वास्तव मे गाने की होड है। परमात्मा करे कि ऐसी लडाई का घाव मेरे दिल में भी होता और उसका नासूर मृत्यु तक हरा रहता। ऐसा घाव आदमी को अमर कर देता है"

शेर—"अगर किसी की मृत्यु इस प्रकार हो तो मरने के लिए बहुत से तैयार हो जाएँ।"

अमीर खुसरो ने सुल्तान अलाउद्दीन से कहा कि वर्त्तमान काल में गोपाल अद्वितीय गायक है और उसके १२०० शिष्य है जो सिहासन को कहारों के स्थान पर उठाते है और उसमें अपनी भलाई समझते है। आप मुझे तख्त के नीचे छिपा दें और गोपाल नायक को बुला लें और उससे कह दे कि खुसरो बीमार है, जब तक उसे आराम न हो तब तक तुम्हारा गाना हुआ करे। गोपाल आया और गाना गाया। अमीर खुसरो गोपाल के आने से पहले गए और तख्त के नीचे छिप गए। ६-दिन तक यही कार्य-क्रम चलता रहा। अमीर खुसरो जो अब तक चुप थे, दरबार में आए। गोपाल नायक ने उनसे आने के लिए कहा। अमीर खुसरो ने कहा कि मै ईरान से अभी हिन्दुस्तान में आया हूँ और हिन्दुस्तान की गान विद्या का मनोरंजन करने आया हूँ। मैं आप जैसा आचार्य नहीं हूँ कि सिर पर कलमा बांधूं। पहले आप गाएँ। उसके पीछे मुझे जो कुछ आता है मैं सुना दूंगा। गोपाल ने गाना प्रारम्भ किया। जो गीत और जो स्वर तथा जो अलाप गोपाल ने सुनाई, अमीर खुसरो ने कहा कि बहुत पहले से मै इन्हें जानता हूँ। गोपाल ने कहा "अच्छा सुनाइए।" अमीर खुसरो ने हर हिन्दुस्तानी राग के मुकाबले में फारसी के राग सुनाए। गोपाल दंग रह गया। इसके बाद खुसरो ने कहा कि यह तो मैंने लोक विख्यात फारसी के गाने सुनाए है। अब वे गाने सुनिए जिनकी मैंने स्वयं रचना की है। गोपाल और सारी सभा सुनकर बहुत प्रसन्न हुई। मैदान अमीर खुसरो के हाथ रहा। वास्तव में बात यह थी कि खुसरो गान विद्या में इतने निपुण थे कि एक बार सुनकर उसी के मिलते जुलते फारसी के गीत बना देते थे और गा देते थे। आदमी की तो यह शक्ति नहीं है जब तक कि वह ईश्वर का

कृपापात्र न हो। हाफिज घीरी जी ने एक शेर लिखा है जिसका अर्थ है —

"जिस प्रकार ईसा मसीह मुर्दों को जिन्दा कर देते थे दूसरे भी कर सकते है, परन्तु शत यह है कि परमात्मा की कृपा दृष्टि उन पर हो।"

ग्याल दो पधित का होता है। उस समय देहली में गाया जाता था। और औरगजेब के काल में आगरे में गाया जाता था। उस जमाने में गायक वहुत थे। किसी भी जमाने में इतने गायक नही हुए थे। इन गाने वालो में अधिक सख्या ग्वालियर वालो की थी। आजकल सन १०७६ हिजरी है। इससे पहले शाहजहां के काल में भी गाने वाले प्रचुर मात्रा में थे।

देहली में सुलतान फीरोजशाह की बनवाई हुई एक इमारत है। यह इमारत दक्षिण से देहली शहर में मिल गई है। इमारत की प्रशसा तथा शहरो और बागो की शोभा का वणन नही किया जा सकता। अगर मेरी लेखनी दशक के पद बन जाए तो भी सैर नही कर सकती। इसलिए यह जिह्वा बन गई और नीचे लिखे हुए शेर उसके साधारण वर्णन में लिख डाले। उन शेरो का आशय इस प्रकार है —

"ऊँचाई में गगन रूपी है और आकृति में स्वर्ग है। इसलिए इसको पहला आसमान और नवाँ स्वग कहना चाहिए। पृथ्वी आकाश की तरह बन गई परन्तु आकाश की तरह डाँवाडोल नही। इसमें जो खिडकी है उसमें कस्तूरी और अम्बर के धूम्र से ऐसा मालूम होता है कि वह खिडकी किसी सुन्दरी की काजल लगी हुई आँख है। दीवार या पलस्तर इतना साफ है कि जैसे

कि सुन्दरी के शरीर पर चन्दन पुता हो। चूने पर इतनी पालिस की गई है कि ऐसा प्रतीत होता है कि दो प्रकाश देने वाली आँख से उसको रगड़ा है। यदि भेंडा व्यक्ति, जिसे प्रत्येक वस्तु के दो आकार दिखाई देते हैं इस भवन की ओर दृष्टि डाले तो दो भवन नहीं दिखाई पड़ेंगे। तात्पर्य यह है कि यह अद्वितीय है।'

इस देश की भाषा संस्कृत है। ख्याल में प्रेमी और प्रेमिका का वार्तालाप होता है। इसमें चार पंक्तियाँ होती है। इसमें ता-ता-ती-ली नहीं गाया जाता छंद में ता-ता-ती-ली होता है। तराने में आदि से अंत तक ता-ता-तिल्ली होता है। कभी कभी गानें में फारसी के शेर भी मिला देते है। सुहले में भी कई पंक्तियाँ होती है। इसमें विवाह का वर्णन होता है।

मथुरा में एक राग और गाया जाता है जिसे विष्णुपद कहते है। उसमें चार बोल से लेकर आठ बोल तक होते है। इसमें कृष्णजी की स्तुति होती है। इसमें पखावज बजाई जाती है।

जो कुछ सिंध में गाया जाता है उसको कल्ली कहते है। उसमें स्त्री द्वारा प्रेम के गीत गाए जाते हैं। इसका एक रूप लजारी होता है। उसमें प्रेम की तपन दिखाई जाती है। इस राग को गुजरात में गाते है। एक कजली नाम का गाना होता है। इसमें किसी का यश वर्णन होता है। रणक्षेत्र में कड़क्के गाए जाते है। इसमें चार बोल से आठ बोल तक होते है। इसमें दो दो पंक्तियाँ होती हैं तथा तुकें भिन्न होती हैं। एक राग साधरा (सोरठ) होता है। इसमें चार, छः या आठ पंक्तियाँ होती हैं। यह नाना भाषाओं में गाया जाता

है। कभी रण की वीरता का वर्णन होता है तथा कभी सौंदर्य तथा कभी साहस का भी वर्णन किया जाता है।

नव शिशु उत्पन्न होने के समय जो राग गाया जाता है उसे लीला कहते हैं। इसमे भी ख्याल की भाति दो पक्तियाँ होती हैं और उसमें यह वर्णित होता है कि शिशु के उत्पन्न होने पर मा बाप की आँखें ज्योतिर्मयी हो गईं और उसके पालने की सजावट का वर्णन होता है। शिशु को भावी जीवन मे गौरव एव ख्याति प्राप्त हो तथा वह चिरजीवी हो, ऐसा आशीर्वाद होता है।

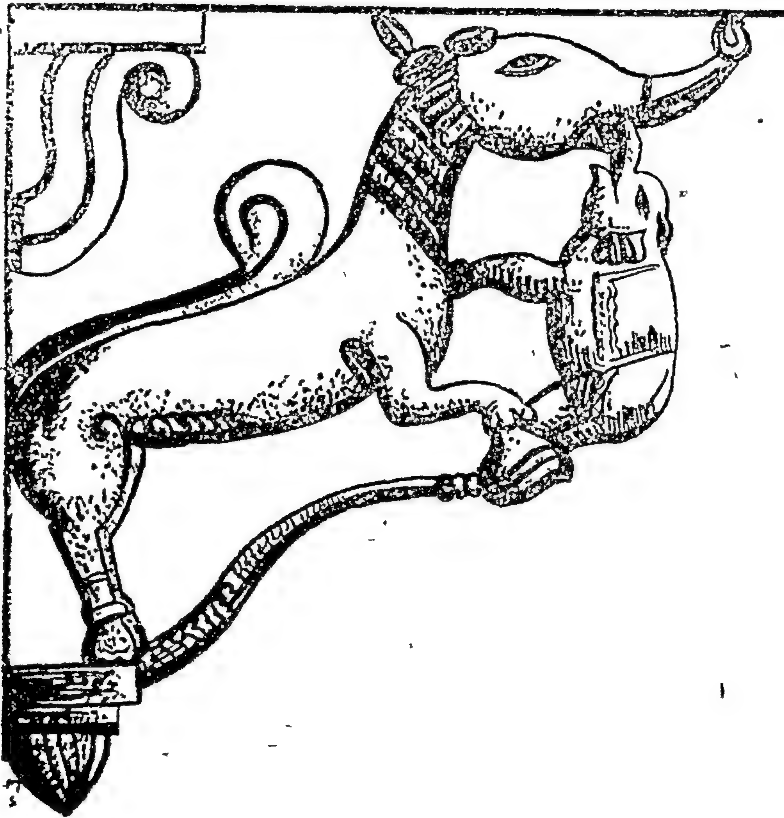
गानों में से कुछ राग आचार्यों ने उत्सव, विवाह आदि के लिए नियत कर दिए हैं, जैसे जयतिश्री।

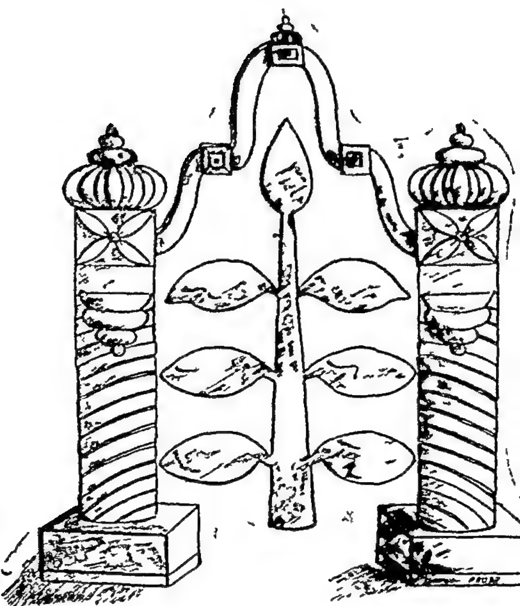
लाहौर और उसके पास जो गाने गाये जाते हैं उन्हें छन्द कहते है। शेख बहाउद्दीन जकरिया मुल्तानी ने फारसी मे छद का नाम जहद रख दिया है। इसमें प्रेम कहानी, अपनी दीनता तथा परमात्मा की स्तुति होती है। यह पजाब में बहुत गाया जाता है। इसमें दो अथवा चार पक्तियाँ होती हैं। लेकिन दो पक्तियों की तुकें भिन्न होती हैं। कभी कभी इनमे मरने वालो की स्मृति की जाती है।

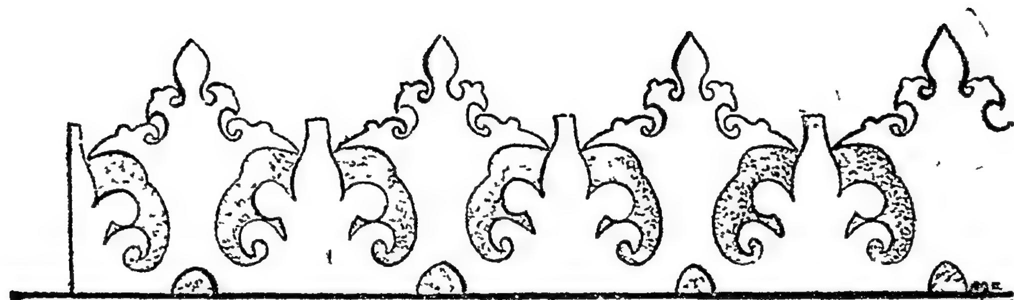
एक राग का नाम है—मान काल। यह जौनपुर में गाया जाता है। उसमें पक्तियों की सख्या निश्चित नही है। दो दो पक्तियाँ भिन्न तुकान्त होती हैं तथा पक्तियाँ पढकर पहले बोल को दोहराया जाता है। इसमें प्रेमी, विरही नायक की तारीफ होती है। इसमे डोम, ढाढी आदि गाते

है। इसे दो आदमियों से कम नहीं गाते। गुरु (उस्ताद) पहले दो पंक्तियाँ गाता है। तीसरी पंक्ति को उसका शिष्य गाता है। फिर गुरु गाता है तथा फिर शिष्य गाता है।

एक और गाना है जो काजी महमूद गुजरात ने निकाला है। उसमें प्रेम और प्रेमी तथा मरने वालों की याद वगैरह का वर्णन होता है। प्रत्येक देश में इसके बहुत से गीत बने हुए है।







पंचम सर्ग

वाद्य यंत्र, नायक, नायिका और सखी

वाद्य यंत्र चार प्रकार के होते हैं। एक वह जिसमें तार प्रयुक्त होता है, दूसरा वह जिसमे खाल प्रयुक्त होती है, तीसरे धातु पर चोट पड़ने से आवाज देने वाले, तथा चौथे वह जो मुह से बजाए जाते है।

प्रथम प्रकार के वाद्य यंत्रो में वीणा है। इसमें एक गज लम्बी लकड़ी होती है जो खोखली होती है। इसके दो सिरे पर दो तूंबे लगे होते है। इन परदो पर तारों को छोटा बडा करनें से स्वर बदलता है।

दूसरा वाद्य यंत्र है रबाब, जो वीणा की तरह होता है। इसमें छः तार तांत के होते है तथा कुछ लोग सात अथवा बारह तार भी रखते है। बारह

तार वाले रबाब में कुछ तार लोहे के तथा कुछ तांबे के भी होते हैं। इनसे तांत के तारों को सहायता मिलती है। चुटकुला और ख्याल गाने वाले सूक्ष्म स्वर (बारीक आवाज) में गाते हैं। अधिक तार वाला रबाब उसमें काम में आता है। परन्तु इसके बजाने के लिए दक्ष आचार्य चाहिए। छ तार वाले रबाब पर भी ये बजाए जा सकते हैं।

एक बाजा सरनदन कहलाता है। यह ईरान वालों के कानून बाजे से मिलता जुलता है। इसमें २४ तार होते हैं। उसमें तांबे के भी तार होते हैं तथा कुछ लोहे के। आधे तार नीचे होते हैं तथा आधे ऊपर (कानून में चालीस तार होते हैं)। दूसरे तार तांत के होते हैं। कहते हैं कि श्रुति (श्रुति) शब्द के लिए यही वाद्य यंत्र प्रयोग होता है। यह ज्ञात नहीं कि इसे किसने बनाया।

सारंगी भी हिन्दुस्तान का वाद्य यंत्र है, जो बहुत बजाया जाता है। यह रबाब से छोटी होती है। यह ईरानी बाजे अजबक से मिलती जुलती भी है।

एक बाजा और होता है जिसे तम्बूरा कहते हैं। इसमें एक तूंबा होता है और वीणा की तरह दो तार धातु के तथा दो तांत के होते हैं। कुछ लोग उसमें पांच तार लोहे के तथा तांबे के लगाते हैं।

दूसरे प्रकार के वाद्य में प्रथम बाजा डमरू होता है। कहते हैं कि महादेव जी ने इसे बनाया था।

पखावज का निर्माण उसके बाद हुआ है। ईरानियों में भी एक बाजा पखावज की तरह होता है। उसका नाम है जमातंग। लेकिन वह पखावज से बड़ा होता है। पखावज में खोखली लकड़ी को खाल से मँढ़ लिया जाता है। यदि पखावज को कांख में दबा लिया जाय तो भी दोनों हाथ उस पर पहुँच सकते है। दोनों तरफ खाल मँड़कर डोरी से जकड़ देते है।

मँढे हुए बाजों में एक ढफ कहलाता है। एक ढोल होता है तथा एक ढोलक होती है। खंजरी एक प्रकार का ढफ होता है। और उसमें घुंघरू लगा देते हैं।

तीसरे प्रकार के वाद्य यंत्रों में मंजीरे है। हिन्दी भाषा में उसे ताल कहते है। ये वहुधा धातु के वनते है। कभी ये लकड़ी अथवा पत्थर के भी बनते है।

जल तरंग भी एक बाजा होता है। ये चीनी के प्याले होते है। प्रत्येक प्याली क्रमागत छोटी होती है। इन प्यालियों में पानी भरते है और पानी स्वर के अनुसार घटा वढ़ा लिया जाता है। यह दो लकड़ियों से नक्कारों की तरह वजाया जाता है। ईरान में भी इस प्रकार का बाजा होता है। वादक को चीनीनवाज कहते है। चीनीनवाज का प्रयोग निम्नलिखित शेर में किया जाता है :—

"एक तरफ चीनीनवाज यानी जल तरङ्ग बजाने वालों ने अपनी अपनी कला से सभा को विना शराव के प्यालों से मस्त कर दिया है।"

तीसरी प्रकार का वाद्य यंत्र जिसे हिन्दुस्थान में सरना कहते हैं उसे ईरान में शहनाज कहते हैं, इसमें दो बासुरी होती हैं। जिनमे सरगम के अनुसार छेद होते हैं और उसमें एक मशक (चमडे की) जोड देते हैं। तुर्की भाषा मे उसका नाम "नै" है।

बासुरी अन्दर से पोली होती है तथा एक गज लम्बी होती है। इसके ऊपर छेद करके एक पतली बासुरी और फँसा देते हैं।

नायकों का वर्णन

कुछ ऐसे नायक होते है जो एक स्त्री रखते है। कुछ ऐसे होते है जो बहुत-सी स्त्रिया रखते है। और सबको अपने वश में रखते है। ये उत्तम श्रेणी के नायक होते है। बहुत से गीतो में नायक का यह रूप दिखाया गया कि स्त्री गर्व से उसको फटकारती है और नायक उसकी चापलूसी करता है। समय के प्रभाव से इस समय मे इसी प्रकार के नायक अधिकाश पाए जाते है।

एक नायक ऐसा होता है जो बहकाकर फुसलाकर स्त्री के मन पर विजय प्राप्त कर लेता है।

नायको के तीनो प्रकार के वर्णन के उपरान्त नायिकाओ का वर्णन किया जाता है —

प्रथम नायिका वह है जो अपने पति को पूजे, उससे स्नेह रखे और लज्जावश दाहिनी अथवा बाई ओर न देखे। रोने मे उनकी आवाज सुनाई

न दे, हँसी उसकी ओठ से आगे न बढ़े। हँसने में उसकी दंत पंक्ति दृष्टिगोचर न हो। वह ऊंचे स्वर से न गावे और जब क्रोधित हो तो बातचीत में उसका क्रोध प्रकट न हो। ऐसी नायिका को स्वकीया कहते हैं।

दूसरी नायिका परकीया होती है। यह छिपकर दूसरे से प्रेम करती है।

सामान्या तीसरे प्रकार की नायिका है। यह धन लोलुप होती है।

स्वकीया तीन प्रकार की होती है। प्रत्येक भांति की स्वकीया तरुणी होती है।

प्रथम अज्ञात यौवना है। इसमें किशोरावस्था और तरुणाई का सम्मिश्रण होता है। परन्तु नायिका को अपने बढ़ते हुए यौवन का ज्ञान नहीं होता।

दूसरा प्रकार ज्ञात यौवना है। अज्ञात यौवना से आगे चलकर ज्ञात यौवना हो जाती है। उसे अपने बढ़ते हुए यौवन का ज्ञान होता है।

तीसरे प्रकार की प्रौढ़ा होती है। इसे दुनियादारी का ज्ञान होता है। लेकिन अपने पति से दूर रहती है। आठ वर्ष से बारह वर्ष तक एक स्थिति रहती है।

कुछ आचार्यों के मतानुसार इसका काल अठारह वर्ष तक है। स्वकीया की दूसरी श्रेणी है मध्या। इसमें लज्जा होती है और साथ ही साथ पति के प्रति निष्ठा भी।

हो जाता है।

सामान्या तीन प्रकार की होती है—१ सभोगदूतिका, २ वक्रोक्तिगर्विता और ३ मानवती। सिभोगदूतिका वह है जो दूती को अपने प्रेमी को बुलाने के लिए भेजे और दूती उसके प्रेमी के पास शयन करे और जब वह नायिका के पास लौटे तो नायिका इस बात को ताड जाए और दूती से नाराज हो और इसलिए कि उसके प्रेमी ने दूती के साथ शयन किया है, दुखित हो जाए। वक्रोक्तिगर्विता वह है जो तुरन्त उत्तर देने में अद्वितीय हो। यह दो प्रकार की होती है—१ प्रेमगर्विता तथा २ तदद्वजगर्विता। प्रेमगर्विता वह है जिसका पति उसे बहुत चाहे परन्तु वह अपनी सखी से इस तरह बात बनावे—"मुख से तो तू अच्छी है क्यो कि तेरा पति तुझे बहुत से गहने पहिनाता है और कहता है कि जो अग गहने से ढक जाता है वह दिखाई नहीं देता, मैं इसको सहन नहीं कर सकता। तदद्वजगर्विता उसे कहते हैं जो अपनी सुदरता पर गर्व करे। मानवती उसे कहते हैं, जिसका पति अन्य स्त्री की ओर देखे तो वह रुष्ट हो जाए और उसकी सखी उसे विभिन्न प्रकार की बातो मे सान्त्वना दे जैसे, क्रोध की आग से पसीना निकल आया है अथवा "तेरे शरीर के रोम काटों की भाति खडे हो गए है, ऐसे कटकाकीर्ण स्थल में तेरा प्रियतम कैसे जा सकता है। आओ, कोई खेल खेलें जिससे तेरा मन उधर आकर्षित हो।"

तीनो प्रकार की नायिकाओ—स्वकीया, परकीया और सामान्या

के भेदों का वर्णन तथा उनके तीनों प्रकारों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त इन तीनों के जो आठ भेद हैं और कथन किए गए हैं वे निम्नलिखित हैं :—

१ प्रोषितभर्तिका—यह वह नायिका है, जिसका पति परदेश में हो और वह नायिका वियोग सहन न कर सके। उसके स्वर भयपूर्ण होते हैं। उसे सुख नहीं मिलता। इसके नौ प्रकार गिनाए गए है। इसका पति रात्रि को बहाना करके चला जाता है—दूसरी स्त्री के साथ शयन करता है—प्रभात को आता है तथा रात्रि के जागरण के चिन्ह उसके मुख पर दिखाई देते है। नायिका इस भेद को जान जाती है, क्रोधित होती है, परन्तु अपनी वाणी से कुछ नहीं कहती तथा केवल उसके हाथ में दर्पण दे देती है। नायक वक्षू ने इस नायिका का ध्रुपद में भलीभांति वर्णन किया है :—

राग सुहारूँ उदय नवरंग पगी,
उत देख प्यारे कर दर्पण में,
निरखि चहूँ अलि अनैन जबही,
प्यारो सलजी तब मोका भोर मँगाई।

इसको प्रौढ़ा खिन्नता भी कहते हैं।

२ कलहतर्ना—यदि उसके पति ने अन्य स्त्री के साथ शयन किया हो, और उसे ज्ञात हो जाए तो वह उससे अपने प्रेम को और बढ़ाती है।

३ बैरलब्धा—वह नायिका है, जो जहाँ प्रियतम किसी अन्य स्त्री से मिलने का वचन करता है वहाँ जाती है और यदि वह वहाँ नहीं मिलता

तो शोक करती है।

४ श्रोनकथना—जहाँ मिलने का प्रियतम ने वचन दिया हो, वहाँ जाती है उसे वहाँ पाकर शोक करती है और अपनी सखी से भी उसका वर्णन नही करती इसको दूतिका भी कहते हैं।

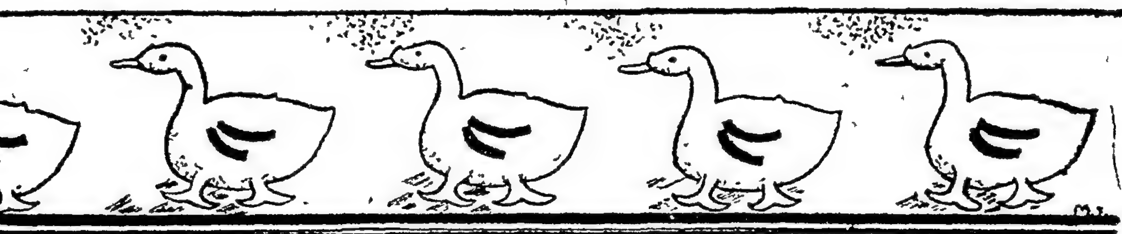
५ वासकसज्जा—प्रियतम के आने का समाचार सुनकर प्रसन्न होती है, और अपने शयनागार को सज्जित करती है।

६ स्वाधीनपतिका—जिसका प्रियतम उसकी आज्ञानुसार चले।

७ अभिसारिका—वह है जो स्वय अपने प्रियतम के पास दौडती हुई जाय।

८ प्रोषितभर्तिका—इसका प्रियतम परदेश जाना चाहता है यहा दु खी होती है तथा पास में कोई सखी सहेली भी नही होती, जिसे वह अपना दुःख सुना सके।

नायक और नायिका के बीच वार्तालाप कराने वाले तथा सुख दु ख के सदेश पहुँचाने वाले व्यक्ति अथवा स्त्री को दूत या दूती कहते हैं। दूत या दूती मिलन और विरह के चिन्हों तथा प्रीति की रीति को पहचानते हैं। नायक और नायिका कैसे उठते-बैठते है, उनका व्यवहार कैसा है, इत्यादि बातों को दूती या दूत भली प्रकार जानते है। इसका आचार्यों ने बडा मनोहर वर्णन किया है। इस छोटी-सी पुस्तक में उसका विस्तार पूर्वक वर्णन नही किया जा सकता। जो सज्जन उत्सुक हो वे वृहत पुस्तको का अध्ययन करें।



छठा सर्ग
गायक के दोष

इस कला के विद्यार्थियों को विदित होना चाहिए कि गायक के २५ दोष होते हैं जिनका जानना अनिवार्य है। वर्त्तमान समय में गायक इन दोषों से मुक्त न हों तो अच्छा नही समझा जाता। यह बात दूसरी है कि धनिक वर्ग उसे चाहे, किन्तु यह कोई प्रमाण-पत्र नहीं है। ये दोष निम्न लिखित हैं:— १ संदिष्ट, २ औखट, ३ सोंगकारी, ४ भीत, ५ शंकित, ६ कंपित, ७ करालो, ८ कपित, ९ काकी, १० बेताल, ११ कसर्म, १२ अंघट, १३ झंबक, १४ तुम्बकी, १५ बक्री, १६ परसारी (प्रसारी),

१७ वनमेलक, १८ नीरस, १६ बेसुर, २० अविगत, २१ स्थान भ्रष्ट, २२ अनुस्थानित, २३ मिश्रित, २४ अनुघात, २५ साननाशक ।

(१) सदिष्ट वह दोष है जब गायक दातो को मिलाकर गाए ।

(२) औखट, जब गीत गाते समय ओज न हो ।

(३) सोगकारी दोष वहाँ होता है जहाँ गीत मे कोई मन मुग्धकारी तथा आल्हादकारी बात नही होती ।

(४) अमीवत (उपरवाली सूची में यह नाम नही है) यह वह दोष है जबकि दातो को दातो से मिलाकर स्वर को ऊपर खीचे और इस प्रकार कई बार किया जाय ।

(५) भीत वह है जो गाते समय डरे । शकित (शीघ्रति) वहाँ होता है जहाँ गाने में शीघ्रता होती है ।

(६) कपित, उस समय होता है जबकि गाते समय शरीर के अग कपित हो ।

(७) कगाली, वहाँ होता है जहाँ कि गायक गाते समय मुह फाडता है तथा उसके दात और तालू दिखाई देने लगते है ।

(८) जिस गायक का स्वर दूषित हो वहाँ कपिल दोष होता है ।

(९) जब गायक गाते समय कौए की भाति आकृति बना लेता है तब काकी दोष होता है ।

(१०) जब गायक ताल के अनसार नहीं गाता तो बेताल दोष होता है।

(११) जब गायक गाते समय ऊँट की तरह अपनी गर्दन ऊँची कर लेता है तब करम दोष होता है।

(१२) जब गायक का स्वर गाने में रोता है ऐसा प्रतीत होता है तब अंधट दोष होता है ।

(१३) जब गायक की गाते समय ग्रीवा और ललाट की नसें उभर जाती हैं, तब झुवक दोष होता है।

(१४) जब गायक के कपोल गाते समय तूंबे की तरह फूल जाते है तब तुम्बकी दोष हो ता हं।

(१५) जब गाते समय गायक की गर्दन टेढ़ी हो जाती है तब वक्री दोष होता है ।

(१६) जब गाते समय गायक की आवाज और अंग ढीले हो जाते है तब प्रसारी (परसारी) दोष होता है।

(१७) जब गाते समय गायक अपनी आंख बन्द कर लेता है तब वनमेलक दोष होता है।

(१८) जब गायक के गाने में रस नहीं होता तब नीरस दोष होता है।

(१९) जब गायक का स्वर गाते समय स्थिर नहीं रहता तब बेसुर

(बेस्वर) दोष होता है ।

(२०) जब गाते समय गायक के शब्द समझ में न आएँ तथा ध्वनि गले से इस प्रकार से निकले मानो गले में कोई चीज अड़ गई है तब अविगत दोष होता है ।

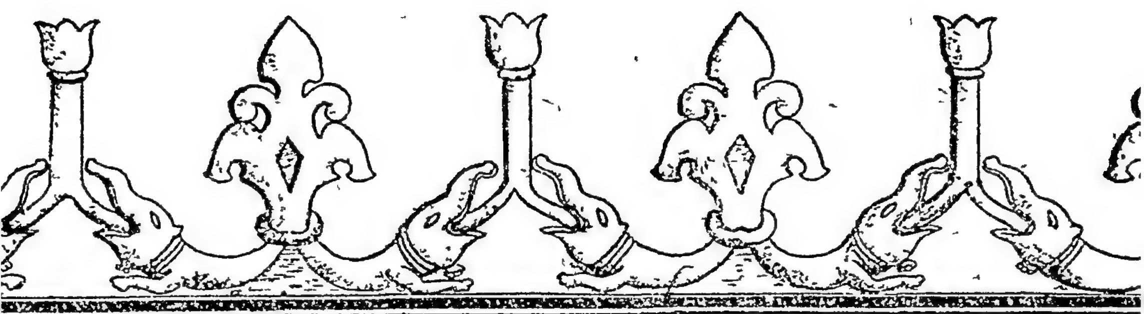
(२१) स्थानभ्रष्ट दोष का वर्णन स्वरों के दोष में दिया गया है । वहा देख लें । भ्रष्ट अपने स्थान से च्युत होने को कहते है तथा स्थान को ग्राम कहते है ।

(२२) अनुस्थानित जब होता है जबकि गायक तीन ग्रामो (स्थानो) से च्युत हो जाए ।

(२३) जब शुद्ध रागो मे कुछ मिला दिया जाता है तब मिश्रित दोष होता है ।

(२४) जब गायक गाते समय सचारी, अस्थायी के वर्ण इत्यादि से बेसुध हों, तब अनुधान दोष होता है ।





सप्तम प्रकरण

कंठ, मुख एवं स्वर की पहिचान

जिज्ञासुओं को विदित होना चाहिए कि आचार्यों ने कंठ के चार विभाग किए है । —१ छाहल, २ नाहत, ३ योनीक, ४ सतरत । सुरति (श्रुति) के अध्याय मे इसका वर्णन किया जा चुका है। सुरति (श्रुति) राग विद्या में तीन प्रकार की होती है । प्रथम को मन्द कहते है, जो कंठ के अग्र भाग से उद्भूत होती है । द्वितीय मध्य कहलाती है, जो कंठ के मध्य भाग से निकलती है । तृतीय तीव्र होती है जो ब्रह्मांड के पास से निकलती है । इन तीनों को मिलाकर श्रुति कहते हैं और सुरति का अर्थ है सुनना । यह भी सुनी जाता है कि हृदय के पास स्नायु है जो ऊपर की ओर जाती है । उस नस में

२६ टेढी नसें है। जब वायु उन नसो में प्रविष्ट होती है तब श्रुति प्रकट होती है। प्रथम नस दूसरी नस से ऊँचे होती गई है। इसलिए जो वायु उनमें चक्कर काटती है वह ऊपर को बढती चली जाती है। बाईस बार कठ से ब्रह्माड तक चढती है इसी को तीन सप्तक कहते हैं। कफ प्रकृति वाले व्यक्ति के कठ से जो स्वर निकलता है उसे धाहल कहते हैं। इसकी तीन प्रकार होती हैं। १ मुकन्द (हलका मधुर), २ मधुर, ३ सुकुमार। जो मद और मध्यम के बीच से स्वर प्रकट होता है उसे अरल कहते हैं। यदि किसी के कठ में पित्त प्रकृति विशेष रूप से हो तो उसको नारस (नारवत) कहते है।वह चार प्रकार का होता है। १ सरमिष्ठान—इसमें तीनो स्थान समान होते हैं। २ अस्थायी—इसमें एक एक स्वर को ठहर ठहल कर गाते हैं। ३ अवरोही—वह है जब स्वर को धीरे धीरे ऊपर चढाया जाए। ४ आरोह—वह है जिसमें स्वरो को धीरे धीरे ऊपर से नीचे की ओर लावे। जिसमें यह तीनो प्रकार मिल जाएँ उसको अजारी कहते हैं। खन अर्थात स्थूल, और खनेरी अर्थात गहरी और चौडी। जिसके कंठ में वात प्रकृति विशेष रूप से होगी उसका कठ सुकुमार होगा। ऐसे स्वर को पवनीक कहते हैं। इसकी चार प्रकार होती हैं। १ निसार अर्थात धीमी और भद्दी, २ नीरस, ३ उच्च अर्थात् ऊँचा, स्थूल अर्थात् मोटा। जिसके कठ में वात, पित्त, कफ तीनो मिले हुए हो, उसको मिश्रित कहते हैं। पर प्रश्न उठना है कि कफ प्रकृति वाले में स्वभावत मिठास होती है और वात प्रकृति वाले में स्वभावत नीरसता होती है। अत यह दोनो मिश्रित कैसे हो सकते हैं। इसका उत्तर हो सकता है कि दो

विपरीत ध्वनियाँ मिलकर एक नई ध्वनि को जन्म देती है। यही बात नारत और पवनीक (अर्थात् पित्त प्रकृति तथा बात प्रकृति वाले) के संबंध में जाननी चाहिए। खन और निसार भी एक दूसरे के विरोधी हैं। परन्तु दोनों मिलकर नई ध्वनि निर्माण करते हैं। यह प्रश्न और उत्तर गायन विद्या के आचार्य और इस्लाम धर्म के पंडित ख्वाजा मोहम्मद सलाह ने अपनी पुस्तक राग-प्रकाश में लिखा है।

श्रुति चार प्रकार की होती है। १ नारत, २ धाहल, ३ नारात, ४ पवनीक। पवनीक वह कही जा सकती है जिसमें निसार और नीरसता न हो। मिश्रित नारात और धाहल उत्तम कही जाती है। मिश्रित पवनीक और और धाहल मध्यम कहलाती है। मिश्रित नारात और पवनीक नीच कहलाती है। कौन से स्वर अशुभ होते है तथा कौन से शुभ, यह गायन के विद्यार्थियों को जानना आवश्यक है, इसी कारण से लिखे गए हैं। इस छोटी पुस्तक में यद्यपि इसके लिए स्थान न था परन्तु विद्यार्थियों को भ रत संगीत न देखने पड़े, इस दृष्टि से इसका वर्णन कर दिय ा है।

पन्द्रह प्रकार के स्वर शुभ समझे जाते हैं--१ मिष्ट, २ मधुर, ३ घपाल ४ तिरस्थान, ५ सुखावा, ६ प्रजर, ७ कोमल, ८ कावा, ९ श्रावक, १० करुण ११ खन, १२ स्कन्द, १३ सलझीन, १४ रक्त, १५ अस्तमवाल।

मिष्ट वह है जिसके सुनने में सबको आनन्द हो और तीनों स्थानों पर कंपन न उत्पन्न हो। मधुर वह है जो अपने स्थान पर स्थिर रहता है तथा

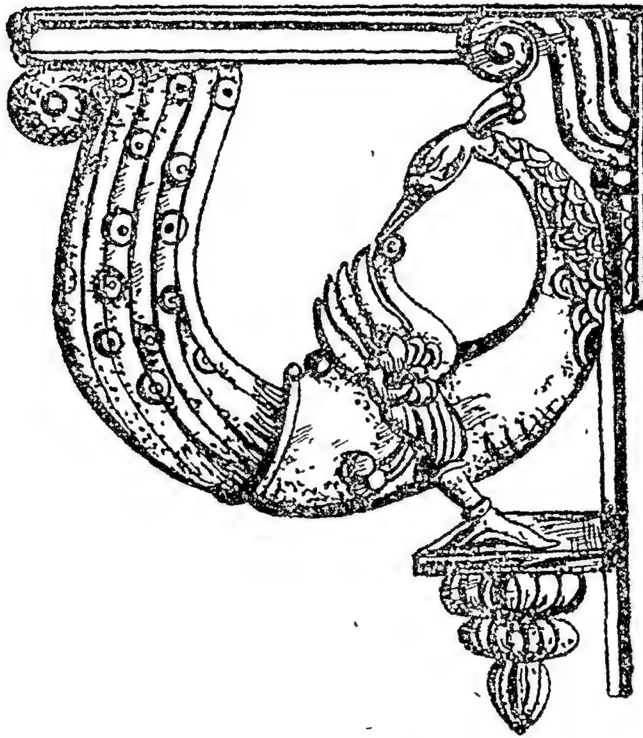
आवाज में मिठास होती है। धपाल वह होता है जब आवाज में मिठास होती है और गायक अपने गले और सांस को खींचकर गाता है। तिरम्यान वह है जबकि गीत मनोहारी हो। सुखावा तब होता है जबकि स्वर सुनकर नींद तिरोहित हो जाए। प्रजर वह है जबकि स्वर कोमल के स्वर मे मिलता हो। बावा वह है जबकि ध्वनि मोटी हो। श्रावक में स्वर ऊँचा और दूर तक सुनाई देता है। करण का श्रवण करने से करुणा का उद्रेक होता है। खन वह ध्वनि है जिसकी गति दूरगामी तथा मोटी हो। स्कन्द मीठा तथा दूर तक सुना जाने वाला होता है। सलङ्गीन या तार नहीं टूटता है तथा वह एक दूसरे से सबद्ध हो। रक्त मनोहारी और मीठी होती है। अस्तमवाल वह है जो निर्मल हो और तीव्र हो।

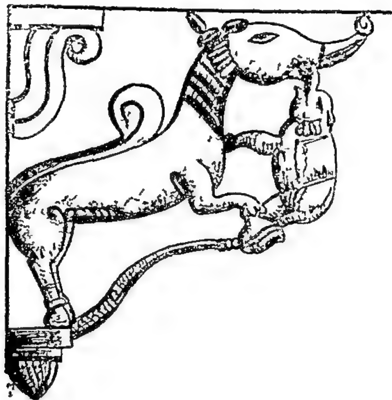
मुख और ध्वनि का वर्णन

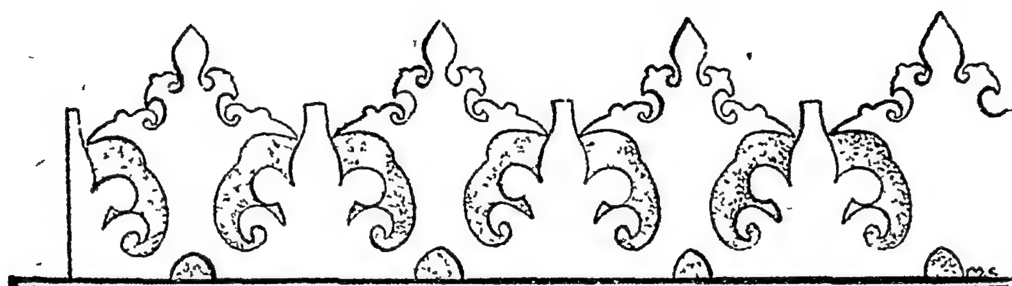
ध्वनियों का प्रकार—१ रुक्षित, २ स्यिन, ३ निसार, ४ काकवली, ५ केत, ६ कीन, ७ कृष्ण, ८ मखन।

रुकाक्षित वह है जिसमें खरांटे की शुष्क आवाज निकले। स्थित (अस्थिर) वह है जो फैल जाए, बिखर जाए। निसार वह है जो भद्दी और अप्रिय हो। काकवती वह है जो काकवत कानों को बुरी लगे। केत वह है जो तीनों स्थानों पर न पहुँचे तथा भद्दी और भोंडी हो। कीन वह है जो मन्द और तीव्र पर कठिनाई से पहुँचे। कृष्ण वह है जो बारीक हो तथा नीरस हो। मखन वह है जो कुक्कुट की आवाज की तरह भद्दी हो। ऐसे गाने वाले को जो दो स्वरों में प्रवीण न हो, सारीर कहते है।

कुछ लोग गायकों को दो भागों में विभक्त करते है। १ नसारीर, २ कसारीर। नसारीर वह है जिसका स्वर आनन्ददायक, मीठा, मनोहर, गहरा, चौड़ा, कोमल और ओजस्वी हो। कसारीर वह है जिसका स्वर नीचा भद्दा, शुष्क, घृणास्पद, काकवत और कंपित हो। सीसारतर वह ध्वनि है जो बिना परिश्रम के दूर तक जाने वाली हो मन को मोहनेवाली हो परन्तु वह ईश्वर के अनुग्रह के बिना असंभव है।







आठवां प्रकरण

गायनाचार्यों की पहिचान, उनके लक्षण तथा उनकी विशेषतायें

शब्दों को गान विद्या में वाणी या मात कहते हैं और गीत को धातु कहते हैं।

गायकों तथा गीत रचयिताओं को वाणीकारक कहते हैं। वे तीन प्रकार के होते हैं। श्रेष्ठ वह है जो वाणी और गीत को भली प्रकार जानें और वाणी शब्दों को कहते हैं।

अतः श्रेष्ठ गायक तथा गीत रचयिता को व्याकरण का अच्छा ज्ञान होना

चाहिए तथा शब्द ज्ञान में प्रवीण होना चाहिए। पिंगल और अलंकार का भी अच्छा ज्ञान अनिवार्य है तथा उसे रस और भाव का भी अच्छा ज्ञान होना चाहिए। देशाचार और लोकाचार का भी ज्ञान होना आवश्यक है तथा अपनी कला में प्रवीण होना चाहिए। उसकी प्रवृत्ति कलानुवर्ती तथा समय से सामञ्जस्य स्थापित करने वाली होनी चाहिए तथा उसे कुशाग्र बुद्धि होना चाहिए। दूसरों को लाभ पहुँचाना, उसके स्वभाव में होना अनिवार्य है। क्योंकि यह उसकी प्रतिष्ठा एवं प्रभुता का हेतु होता है। शास्त्रार्थ करने में उसकी क्षमता होना आवश्यक है, जिससे लोग उसकी धाक मानें। गीत का रचयिता होना तथा गायन की ओर हार्दिक रुचि होना, भी गायनाचार्यों को अभीष्ट है। उसके गीत के विषय विचित्र एवं अनूठे होने चाहिए तथा उसे प्रबंध का ज्ञाता भी होना चाहिए। उसे प्राचीन रचनाएँ कण्ठस्थ होना चाहिए। संगीत, वाद्य एवं नृत्य में भी उसकी पैठ होना अनिवार्य है।

स्वर और लय का वर्णन

जैसे दीपक में लौ धीरे धीरे ऊपर की ओर उठती है और कहीं नहीं टूटती है, इसी प्रकार की स्थिति लय की है। निपुण गायनाचार्य वही है जिसे लय और तान का पूरा ज्ञान हो और वह तान और गीत में नई सृष्टि कर सके। एक राग से दूसरे राग का मिश्रण करना भी उसे आना चाहिए। उसे स्वदेश के गीतों तथा अलाप और गमक के तीनों स्थानों के प्रकारों से परिचित होना आवश्यक है। ऊपर उत्तम प्रकार के गायक का

वर्णन किया गया, नीचे मध्यम कोटि के गायक का वर्णन किया गया है।

मध्यम कोटि का वाणीकारक वह है जो शब्दों पर अधिकार न रखे तथा उसकी रचना भी अच्छी न हो, परन्तु धातु अर्थात् गान विद्या में प्रवीण हो। इस मध्यम गायक की एक श्रेणी और है—जिसका शब्द पर अधिकार हो और कला में भी प्रवीण हो। साराँश यह कि धातु भी समझे और मात भी समझे परन्तु प्रबंध का ज्ञाता न हो।

गायनाचार्यों की एक निम्न श्रेणी भी है—जो व्यक्ति गान विद्या को न जाने, परन्तु गीत रचना में निपुण हों, उसे अधम कहते हैं अथवा निम्न कहते हैं।

रचना दो प्रकार की होती है—१ जिसमें नवीन विषयों का निर्माण हो, वह उत्तम है। २ जिसमें शब्द चमत्कार तो हो परन्तु विषय मौलिक न हो, वह मध्यम प्रकार है।

कंकार उस गायक को कहते हैं जो वर्तमान रागों को तो जाने पर पुराने रागों का उसे ज्ञान न हो। गंधर्व वह है जो नवीन (आधुनिक) और प्राचीन देशी और मारग दोनों प्रकार के गीतों का ज्ञाता हो, सुराद वह गायक ह जो प्राचीन राग अर्थात् मारग (मार्ग) को गा सके परन्तु देशी और नवीन रागों को न गा सके।

गायक का स्वर मनोहर होना चाहिए। उसे संगीत के आचार से परिचित होना चाहिए। उसे अंक को भी जानना चाहिए स्वर के ये खंड हैं जिनसे राग उत्पन्न होता है। अंकों

की सख्या तेरह है। स्वर वह है जिससे राग का आरम्भ हो और न्यास वह है जिससे राग की समाप्ति हो। गायक को राग के अक, माष्याक, त्रियाव और अलाप अक का ज्ञान होना चाहिए। प्रबध के ऊपर तो उसे खूब गाना चाहिए। अलाप के ऊपर हर तीसरे स्थान पर गुमक से स्वर को बदलना चाहिए। अलकार और गुमक इत्यादि पर उसे कपित न होना चाहिए। गले पर उसका पूर्ण अधिकार होना चाहिए, ताल को भलीभाति जानना चाहिए, गाने से जो रग (समा) उत्पन्न हो, उसे जानना चाहिए। कोष पर उसका अधिकार होना चाहिए, गाने का उसे अच्छा अभ्यास होना चाहिए, शुद्ध रागो से छालक रागो को पहचानने की शक्ति होनी चाहिए। उसे काक (परदे) के प्रकार जानना चाहिए। अस्थायी और निचारी के पदो का व्यावहारिक ज्ञान होना चाहिए तथा गायकों के उपर्युक्त दोष से रहित होना चाहिए। रोचकता अधिक मात्रा में होना चाहिए, हँसने-हँसाने वाला होना चाहिए, स्मरण शक्ति तीव्र होना चाहिए, गानें में तीव्र होना चाहिए, उसके गाने पर समा बँध जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि उसे किसी विख्यात गायनाचार्य का शिष्य होना चाहिए।। ऐसे गायक को उत्तम कहते है।

मध्यम कोटि का गायक वह है जिसमें उपर्युक्त गुण अधिक मात्रा में हो किन्तु दोष न हो। अधम कोटि का गायक वह है जिसमें उपर्युक्त गुण कुछ कम मात्रा में हो, किन्तु दोष अधिक हो।

ये तीनों प्रकार के गायक पाँच भागो (प्रकारो) में विभक्त है। १ शिक्षाकार, २ अलकार, ३ रसिक, ४ रोचक, ५ भावुक, ६ । शिक्षाकार

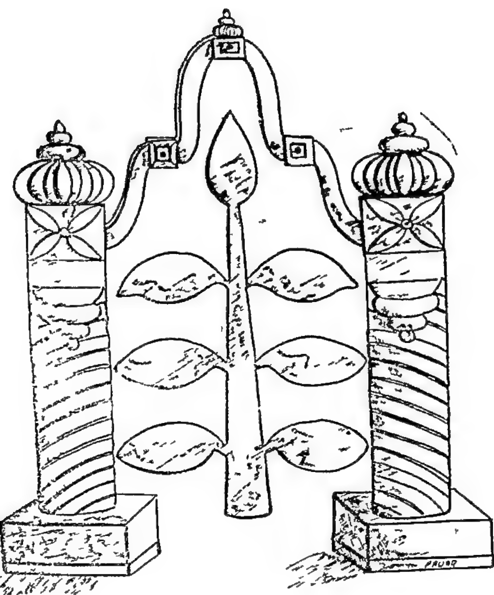
वह है जिसने जिस भांति गायनाचार्यों से सीखा हो, दूसरों को सिखा सके। अलंकार वह है जिसनें गायनाचार्यो से जो कुछ सीखा हो, उसे ज्यों का त्यों अर्थात् अपनी ओर से बिना कुछ मिलाए गा सके और जैसा आचार्यो से सीखा हो, दूसरों को सिखा सकें। रसिक वह है जो गाते समय अपने आप को भूल जाए। रोचक वह है जिसका गाना सुनकर श्रोता अति प्रसन्न हो। भावुक वह है जो प्रत्येक राग को अच्छी तरह से गा सके तथा उसके दो दो रूप दिखा सकें।

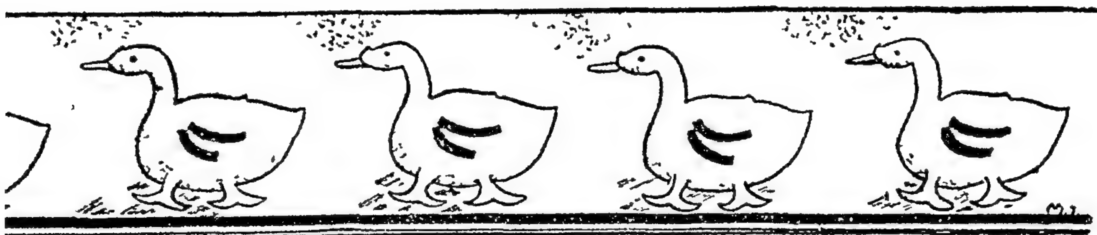
भावुक पाँच प्रकार के होते है उसके तीन प्रकार ये हैं---१ एकल, २ जम्मल, ३ वृन्द।

एकल वह है जो अकेला (अर्थात् बिना किसी सहयोग के) राग गा सके और श्रोताओं को तन्मय कर सकें।

जम्मल वह है कि दो गायक इस प्रकार से गाएँ कि श्रोताओं को एक ही गायक प्रतीत हो, तथा श्रोता तन्मय हो जाएँ।

वृन्द वह हैं जो मंडली के साथ गाएँ और इस प्रकार गाएँ कि सबका स्वर एक ही गायक के स्वर सा प्रतीत हो और श्रोता तन्मय हो जाएँ। ये बंधन स्त्री और पुरुष दोनों पर लागू हैं। यदि स्त्री गाने वाली हो तो वह तरुणी और सुन्दरी होना चाहिए।





नवां प्रकरण

वृन्द और उसके लाभों का वर्णन

वृन्द का अर्थ है गीत को वाद्य यंत्रों सहित सामूहिक रूप से गाए जाने की व्यवस्था। यह तीन प्रकार का होता है १ उत्तम, २ मध्यम और ३ निकृष्ट।

उत्तम वह है जब चार प्रथम श्रेणी के गायक, आठ मध्यम श्रेणी के गायक, बारह सुकंठा स्त्री, चार बांसुरी बजाने वाले और चार मृदंग वाले संगीत के लिए एकत्रित हो।

उत्तम वृन्द मे निर्धारित गायक और वादक समाज जब आधी आधी संख्या मे हों, तब उसकी कोटि मध्यम होती है।

निकृष्ट वह है जब कि एक गायनाचार्य , तीन मध्यम श्रेणी के सद् गायक, चार सुकठ स्त्री, दो वासुरी बजाने वाले और दो मृदगवादक सगीत के लिए एकत्रित हो ।

सुकठा स्त्रियों का वृन्द दो प्रकार का होता है—उत्तम और मध्यम ।

जब दो सगीत विदुषी, दस मध्यम श्रेणी की गायिकाएँ, दो वासुरी बजानेवाली तथा दो मृदग बजाने वाली गायन के लिए एकत्रित होती है तब उत्तम वृन्द होता है ।

जब एक विदुषी गायिका, चार मध्यम श्रेणी की और चार वासुरी बजाने वाली होती है तब मध्यम होता है । जिस स्थान पर उक्त निश्चित सख्या से कम हो, तो उसे अवृन्द कहते हैं ।

उपर्युक्त सख्या ही शास्त्रोक्त कहलाती है, इसके प्रतिकूल नही । यदि उत्तम वृन्द की सख्या से अधिक गायक और वादक एकत्रित हो तो उसका नाम कोलाहल होगा, वृन्द नही ।

वृन्द के छह लाभ हैं

१ निम्न श्रेणी के गायको को प्रवीण कलाकारो में सरक्षण (ओट) मिल जाता है ।

२ गायको की दक्षता में अन्तर होने से स्वर साकार हो जाता है ।

३ ताल को विश्राम मिल जाता है जिसके कारण गायक को अपनी

है) वहाँ उन्होंने अपना स्थान बना लिया कभी कभी अपनी शिकार पर गर्व किया करते थे। ऐसा ज्ञात होता है कि राज्य की ओर से इस कार्य (शिकार) पर नियुक्त हों। सन्यासी होकर उन्होंने किसी स्त्री का मुंह नही देखा और पूर्ण ब्रह्मचारी रहे। सदा हरे रंग के कपड़े पहनते थे। जब तक जीवित रहे कहते थे कि यह जामा परमात्मा की ओर से हमें मिला है। मार्गी (प्राचीन, गीत) की कला में उनके समान कोई दक्षिण में भी नहीं था। कवित्त, ध्रुपद का ख्याल और तराने में इनकी रचनाएँ अच्छी हैं। वे कहते थे कि चुटकले को गाना गायन के सब प्रकारों से कठिन है। रवाव, वीणा और अमरती को खूब वजाते थे। एक वाद्ययंत्र का भी इन्होंने आविष्कार किया था। इनके दो शिष्य जो वाद्यकला में निपुण थे, मेरे पास थे। उस वाद्ययंत्र में जो दोष देखने में आया वह यह था कि वह बिना शारीरिक बल के नहीं बजाता था। वाद्ययंत्र ऐसा होना चाहिये कि बजाने वाले का उस पर अधिकार हो, न कि गायको और वादकों पर उसका अधिकार हो। ११७ वर्ष की आयु में वे स्वर्गवासी हुए। मै अपने देश में उनसे साक्षात्कार न कर सका। परन्तु उसकी महानता का हाल सुनकर शेख पीर मुहम्मद साधु हो गए थे उनके (शेख बहाउद्दीन के) पास रहते थे। उनकी (वहाउद्दीन की) प्रतिष्ठा और सम्मान साधुओं और राजाओं पर समान था। शेख पीर मुहम्मद के पिता इन्हें छोटी उम्र में ही छोड़कर मर गए थे। कुछ समय इन्होंने शेख नसीरुद्दीन के पास व्यतीत किया। शेख वहाउद्दीन इनको बहुत प्रिय थे। उनकी इन्होंने बहुत सेवा की। इनकी युवावस्था के समय शेख वहाउद्दीन स्वर्गवासी हो गए और ये गद्दी पर बैठे। जब मैं उनसे मिला था उनमें कर्मकांडियों की

कोई बात नही थी । वे प्रेम रग में रँगे थे । शेख अत्तार ने क्या अच्छा लिखा है "हे परमात्मा, नास्तिको को तू नास्तिकता में भर दे और आस्तिको को धर्म मे परन्तु मुझे तो प्रेम का एक कण दे दे ।"

शेख नसीरुद्दीन का स्थान उस समय के श्रेष्ठ सगीतज्ञो में अग्रगण्य था । सगीत विद्या उनके लिए प्रकृति की देन थी । उस समय यह कोई नही बता सकता था कि उन्होने सगीत शिक्षा कहाँ प्राप्त की थी । वे गर्व सहित स्वय इस बात को कहा करते थे कि उन्होने सुल्तान हुसेन शर्की की गायन व्यवस्था को नवजीवन दिया । इनकी भी चुटकले और ख्याल की रचना उच्चकोटि की है । इन्होने ध्रुवपद और तराने भी बनाए, किन्तु उनमें सरसता नही है । यद्यपि सगीत विद्या में सुल्तान हुसेन शर्की का स्थान शेख से ऊँचा था, किन्तु जब शेख गाते थे, तो यह ज्ञात होता था कि सुल्तान शर्की गा रहा है । ये गाते गाते गीत में अपनी ओर से कुछ नए स्वर जोड देते थे और अलाप में अन्तर उत्पन्न कर देते थे । जो सगीत शास्त्र के अनुकूल तो नही होते थे, किन्तु गाने में सौंदर्य की वृद्धि अवश्य कर देते थे । ये हिजरी सन् ५०-७६ के बीच में जलन्धर के रोग के कारण स्वर्गवासी हुए ।

मिया डालू ढाडी

ये साधुओ की भाति जीवन-यापन करते थे । धनियो को ये कतई परवाह नही करते थे । मैंने आगरे में देखा था । उनके बराबर ध्रुवपद गाने वाला मैंने नही सुना । शेख साहब की भाँति वे गीतो की रचना भी करते

थे। यद्यपि उस समय के व्यक्तियों की रुचि गीत में अधिक थी, फिर भी ऐसे गुणी व्यक्ति की ओर से वे उदासीन रहे। वे सरोद ऐसा बजाते थे कि उसके समान किसी समय में भी वैसा नहीं सुना गया। युवावस्था में न्यूमोनियाँ की बीमारी से अकबराबाद में उनका देहान्त हो गया। निम्नलिखित पद उनकी दशा पर पूर्ण प्रकाश डालता है। उसका आशय यह है :—

"संसार में हमें कोई खरीददार नहीं मिला इसलिए हमारा रतन फिर खान में जाता है।"

लालखां कलावंत

लालखां कलावंत समन्दर खां के पुत्र थे। इन्हें [illegible]
जाता था। ये मियाँ तानसेन की मंडली में पहुँचे। [illegible] गायें)
हुए और इन्हें संगीत-शिक्षा के लिए अपने [illegible] दोनों में
और विलासखां की लड़की के साथ इनका विवाह कर दिया। [illegible] ट अकबर
के सामने ही ये अपने गुरु विलासखां से [illegible] गायन का
फिर भी अपने को विलास खां का शिष्य ही [illegible] से अपरिचित
यह उच्चकोटि के गायक थे और हिजरी [illegible] और सूरजखां
हो गया। [illegible] थे, तान

जगन्नाथ, कविराय की उपाधिवाले

तानसेन के बाद इनके समान [illegible]
धर्म के आडम्बर से परे थे। ये जो [illegible]

थे, तानसेन उसे बहुत पसंद करते थे और कहते थे कि यदि आयु ने इनका साथ दिया तो मेरे बाद गीत-रचना में इन्हीं का स्थान होगा। १०० वर्ष की अवस्था में इनका देहान्त हुआ।

सुहेरसैन

यह मियाँ तानसेन का नाती था। यह भी गान-विद्या में प्रवीण था। परन्तु था कुछ सनकी। यह शाहशुजा के साथ रहता था, जो शाहजहाँ का दूसरा बेटा था। ये बंगाल में हिजरी सन् ७०-८० के बीच में परलोक-वासी हुए। इनका लड़का सुचीनसेन इनके समान गायन में तो नहीं है, परन्तु गीत-रचना में अच्छा है। आजकल यह हिजरी सन् १०८३ में ईश्वर की कृपा से गीतों की रचना करके अपना जीवन व्यतीत करता है, इतना ही बहुत है।

मिश्री खाँ ढाडी

यह बिलासखाँ के शिष्यों में से था। सुल्तान शाहशुजा के साथ यह बंगाल गया था जहाँ हिजरी सन् ८० में इसका देहान्त हो गया। यह गीत की रचना अच्छी करता था।

मीर ख्वाल कव्वाल

यह उच्च कोटि का गायक था। देहली इसका निवास-स्थान था। हिजरी सन् ८० में यह इस संसार से विदा हुआ।

हसन खाँ लोहार (लुहार)

यह अद्वितीय गायक था। हिजरी सन् ७० में इसका देहान्त हो गया।

कला दिखाने का अवसर मिल जाता है।

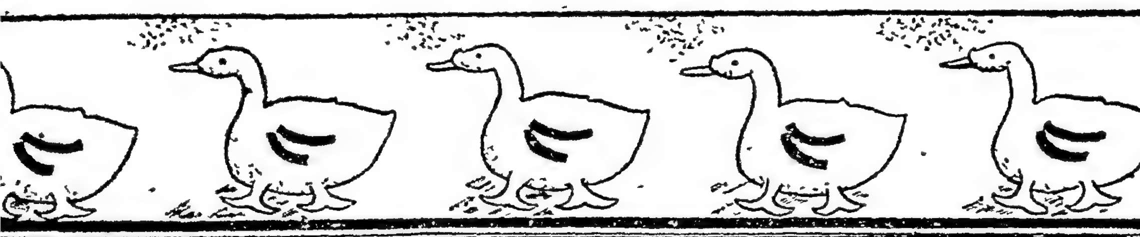
४ जब एक स्वर अपने अपने उच्च स्थान पर नहीं पहुँचता तब दूसरे की सहायता से अपने स्थान पर पहुँच जाता है।

५ तीनों ग्रामों की अवस्थाएँ सरल हो जाती हैं।

६ मध्यम श्रेणी के गायकों के दोष उत्तम श्रेणी के गायकों के साथ गाने से छिप जाते हैं।

संगीत रसिकों को ज्ञात होना चाहिए कि "राग सागर" स्वर्गवासी सुल्तान (अकबर) के समय में रचा गया है, उसमें बहुत से राग 'मान कुतूहल' के विपरीत लिखे गए है। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि 'मान कुतूहल' और "राग सागर" के काल में बहुत अन्तर है। उस समय गायक (गायनाचार्य) थे, परन्तु अकबर के काल में कोई भी गायक संगीत शास्त्र के सिद्धांतों में राजा मान के काल के गायकों को नहीं पाता। दूसरे, सम्राट अकबर के समय में बहुधा आताई व्यक्ति थे, जिन्हें गायन का व्यावहारिक ज्ञान तो था, परन्तु वे गायन के सिद्धांत से अपरिचित थे। मियाँ तानसेन, सुभानखां फतहपुरी, चांदखां और सूरजखां जो दोनों भाई थे, मियाँ चंद जो ताँनसेन के शिष्य थे, तान तरंग खां और विलासखां जो तानसेन के पुत्र थे, रामदास, मुड़िया ढाड़ी, मदनखां, मुल्ला इशहाक खां ढाड़ी (इनके कई शिष्य थे इसलिए उन्हे मुल्ला कहते है), खिजरखां, इनके भाई नवाव खां, हसनखां ततवनी जो रईस थे, (ततवन अफगानिस्तान में एक स्थान का नाम है) इस स्थान

पर युसुफजई पठानों ने विद्रोह किया था, जिसको राजा बीरबल ने शान्त किया था, आदि, सभी आताई की श्रेणी में आते हैं। बाज बहादुर जो मालवे का नवाब था, नायक चर्चू, नायक भगवान, सूरतसेन जो मियाँ तानसेन के लड़के थे, लाला और देवी (जो दोनों ब्राह्मण भाई थे,) और आकिलखा जो बादशाह का लड़का था, ये किसी न किसी मात्रा में संगीत के सिद्धांतों से परिचित थे, परन्तु फिर भी नायक बख्शू, नायक पांडे और बख्शू की भांति संगीत शास्त्र के आचार्य नहीं थे। इस बात का प्रमाण इनके गाने की बैठक है। नायक सिंहासन पर बैठता है और वादक (अर्थात् वीणा और मृदंग वादक) सब पीछे बैठते हैं। संगीत की पुस्तक पढ़ी जाती है और नायक (गायनाचार्य) शिष्यों के समक्ष संगीत के सिद्धांतों की व्याख्या करता है और उनको कार्यान्वित करके स्पष्ट कर देता है। संगीत शास्त्र का साधारण ज्ञान रखने वाले व्यक्ति जो कुछ पुस्तक में लिखा होता है पढ़ देते हैं किन्तु उसे कार्यान्वित नहीं कर पाते हैं। यदि केवल पुस्तक पढ़ने से कोई नायक हो जाए तो जो व्यक्ति भी पुस्तक पढ़े वह नायक की उपाधि ग्रहण करे। परन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है। ऐसा व्यक्ति पंडित तो कहला सकता है, परन्तु नायक नहीं। इस बात को विचार में रखते हुए मैंने राग सागर की बात को ग्रहण नहीं किया है और 'मान कुतूहल' का अनुवाद कर दिया है।



दशम प्रकरण

इस प्रकरण में उन गायकों एवं वादकों का वर्णन किया गया है जो मेरे काल में थे और हैं।

शेख बहाउद्दीन

परमात्मा उनकी गुप्त बातों को पवित्र करे। सम्राट शाहजहाँ के राज सिंहासन पर बैठने के समय अर्थात् शाहजहानी संवत् २ में वे स्वर्गवासी हुए। वे अपने समय के उच्च एवं प्रतिष्ठित व्यक्तियों में से थे। ये २५ वर्ष की अवस्था में साधु हो गए थे। इनके सन्यास लेने का कारण यह था कि ये एक हिरन के ऊपर बन्दूक चलाकर उसको मार डालना चाहते थे। हिरण

उनके सामने आया और शेख ने मनुष्य की वाणी में कहा "हे बहाउद्दीन, परमात्मा ने तुझे इसी काय के लिए उत्पन्न किया है, या दूसरा कार्य भी है" शेख यह समझे कि कोई मनुष्य बोल रहा है। उन्होंने दाएँ-बाएँ देखा, परन्तु कोई मनुष्य नहीं दिखाई दिया। हरिण दो-तीन कदम और आगे आया और पुन ये शब्द कहे, शेख यह समझे कि कोई मनुष्य बोल रहा है। दाएँ-बाएँ पुन देखा, परन्तु वहाँ कोई नहीं था, जो दिखाई दे। हरिण फिर कई कदम आगे बढा और कहा कि "मैं हरिण हूँ जो यह तुझसे कह रहा हूँ" और फिर वह शब्द कहे। उसी समय बदूक फेंक कर आपने देशाटन प्रारम्भ किया।

मुल्ला अब्दुर्रहमान ने क्या ही अच्छा कहा "हमारे हृदय में जो इच्छा उत्पन्न होती है, वह सत्य और यथार्थ नहीं होती है। जो कुछ हमारे हृदय में है वह परमात्मा द्वारा ही निर्मित है, और परमात्मा ही उसको पूर्ण करता है। यदि हमारी इच्छा सत्य और यथार्थ हो जाए तो हमारे रोम-रोम की जो इच्छा हो, वह पूर्ण हो जाए। खेद इस बात का है कि मनुष्य इस बात को नहीं जानता कि सारे ससार का निर्माता परमात्मा है। यह जगत आनन्दमय है परन्तु मनुष्य ने स्वय रात दिन के कार्यों से उसे नरक बना दिया है।"

२५ वर्ष देशाटन में व्यतीत किए। बहुत से साधुओं का सत्सग किया। और दक्षिण मे सगीत विद्या सीखी। जब इसकी अवस्था ५६ वर्ष की हुई, तो परमात्मा की आज्ञा हुई कि अपने देश को लौट जाओ। देश है उनका बरनावा। बरनावा झझाना मे एक गाव का नाम है। झझाना गगा और जमुना के मध्य का एक परगना है। (बरनावा वर्तमान मेरठ की एक तहसील

यह अभी जीवित है, इसकी रचनाएँ मधुर हैं। गायन से अपनी जीविकोपार्जन करता है।

केशव ढाडी

इसकी रचनाएँ मधुर है। यह पिस्तर (पंजाब) का रहने वाला था। वहीं लगभग ८०-९० वर्ष की उम्र में मर गया।

अब्दुल सिंह

यह राजशाह का बेटा और राना रामसहाय का पोता था। ये खडगपुर के शासक है। अमीर खुसरो और सुल्तान शर्की की गायन पद्धति में यह निपुण है। कभी कभी यह मुझे भी अपना गाना सुनाता है। परमात्मा उनको चिरायु करे।

मीर अमीर

यह हिरात के सैयदों में से है। इसकी रचनाएँ अच्छी हैं। यह अभी जीवित है।

खमीरसेन तथा उसका पुत्र सुहेल सेन

यह दोनों अच्छे गायक थे। खमीरसेन ने शाहजहाँ कालीन गायक देखे थे। यह ८० वर्ष की आयु में परलोक सिधारा। लड़के की आयु ४० वर्ष की हुई थी कि कि दांत झड़ गए और थोड़े वर्ष बाद उसका देहान्त हो गया। अनुमान है कि वह पचास वर्ष तक जीवित रहा।

सैयद तय्यब उर्फ बुद्धा

यह आगरे के पास किसी गांव का निवासी था। यह मार्गी अच्छा

गाता था। इसका कंठ अच्छा नहीं था। ५० वर्ष की अवस्था में आगरे में इसकी मृत्यु हो गई।

सुदर्शन

यह धर्म के पाखंड से रहित था। इसकी रचनाऐं सुन्दर हैं। यह अच्छा गायक था। ७० वर्ष की आयु में इनका देहान्त हो गया।

सैयद खां नोहार

यह सुभान का पोता था। यद्यपि यह वृद्ध हो गया है, फिर भी जीवित है। कवित्त अच्छी प्रकार गाता है। ध्रुवपद गाना भी उसी का काम है। अमीर खुसरो की पद्धति की कला में भी निपुण है।

अब नीचे वादकों का वर्णन किया गया है —

पुरुषनयन

यह अभी तक (हिजरी सन् १०७६)जीवित है। बादशाह औरंगजेब का कृपापात्र है। इसके दादा शाहजहां की चाकरी में थे और दादा का पिता जहाँगीर की चाकरी में। अपने समय में यह अद्वितीय है। परमात्मा उसकी आयु पूर्ण करे। यह भवनों का बड़ा प्रेमी है।

बायजी दख्खानी

यह उच्चकोटि का वादक था। शराब बहुत पीता था। इसी कारण ईस की मृत्यु हो गई।

सुखी सेन कलावन्त

यह बायजीद का पट्ट शिष्य है और अभी जीवित है। सुल्तान औरंग-जेब का कृपापात्र है।

स्वालेह ख्वानी

यह ढाडी और पहाड़ी था। यह कोमल बजाने में अद्वितीय था। आगरे में हिजरी सन् ६७ में इसका देहान्त हुआ।

हयाती ख्वानी

आजकल हिजरी सन् १०७३ में यह मेरे पास है। यह बहुत ही कोमल बजानेवाला है। परमात्मा उसे चिरायु करे।

करवाई

मृदंगराय इसकी उपाधि है। धर्म के पाखंड से दूर है। यह मार्गी गायन जानता है और सुलतान औरंगजेब का कृपापात्र है। अभी तक जीवित है। यह वाद्य-सम्राट है। मेरे साथ रहता है। परमात्मा उसकी आयु को पूर्ण करे। यह हमारा सौभाग्य है कि वह जीवित है।

फिरोज ढाडी पखावजी

इसका वदन दोष-रहित था। लाहौर में ६७ वर्ष की आयु में इसका देहान्त हो गया।

ताहिर मृदंगवादक

यह ढाढी था । इस काल में इसके समान मृदङ्ग-वादक कोई नहीं है । ८७ वर्ष की अवस्था में इसका देहान्त हो गया ।

अल्लाह दाद ढाडी

यह सारंगी बजाता था । जालन्धर के आसपास का रहनेवाला था । उसके समान सारंगी सुनने में नहीं आई । हिजरी सन् ६७ में उसका देहान्त हुआ ।

मोहम्मद

रसवीन इसकी उपाधि है । यह वीणा बडी कोमलता से बजाता है । यह अभी जीवित है ।

शौकी

यह तम्बूरा बजाने में अद्वितीय था । ऐसा तम्बूरा किसी ने न सुना होगा । हिन्दी और ईरानी दोनों प्रकार के गाने जानता था । काश्मीर उसका देहान्त हुआ ।

अबुल वफा

यह तानाखा का पुत्र था । यह तम्बूरा खूब बजाता था । ७० वर्ष की अवस्था में आगरे मे इसका देहान्त हुआ ।

भगवान

यह अंधा था । पखावज मे निपुण था । धर्म के पाखंड से दूर था ।

किशनसेन

इसकी उपाधि नायक अफजल थी। भत्तू नायक के शिष्यों से इसने कुछ संगीत विद्या का ज्ञान प्राप्त किया था। यह कवित्त बहुत अच्छी तरह गाता था। अपने समय में मारग (प्राचीन गायन) में इसका स्थान उच्च था। हिजरी सन् ६७ में काश्मीर में इसका देहान्त हो गया। इसकी रच-नाएँ अच्छी हैं।

शेख कमाल

यह मियाँ डालू का शिष्य है और हिजरी सन् १०७६ में जीवित है। सेना में नौकरी करके अपनी जीविका उपार्जन करता है। यह कई वर्ष तक मेरे साथ गायन में शामिल रहा।

वख्त खां गुजराती कलावंत

मैंने उसे देखा है, उसका गाना नहीं सुना। परन्तु गानेवाले मित्रों से उसकी तारीफ सुनी है। यह मियाँ तानसेन के शिष्यों में से था। वसंत नाम का एक कलावंत इसके शिष्यों में से था। उसका गाना मैंने सुना है, वह बहुत ही अच्छा गाता था। शिष्य के गाने से गुरु के गाने का अनु-मान करता हूँ। ये हिजरी सन् ६७ में स्वर्गवासी हुए। इसका शिष्य हिजरी सन् ७० में संसार से विदा हुआ।

रंगखां कलावंत

यह उच्च कोटि का गायक था। यह शाहजहाँ के दरबारी गायकों में

से था। थोड़े ही गाने से श्रोताओं को तन्मय कर देता था। हिजरी सन् ८०-९० के लगभग इसका देहान्त हो गया। फकीरों (साधुओं) से मिलने का इसे बहुत शौक था और पहुँचे हुए फकीरों के पास जाया करता था। शाहजहाँ के काल के गायक इसके देखे हुए थे।

खुशहाल खाँ

यह लालखाँ का बेटा था, जो समन्दरखाँ का दामाद था। यह बाप की पदवी को पहुँचा और आज हिजरी सन् १०७९ में उसके समान कोई गायक नहीं है। अभी के दरबार से इसका सबंध है। और गुलाम मोहिउद्दीन अजमेरी का यह भक्त है। यह उन सज्जन व्यक्तियों में से है, जिन्होंने सेना का वेश छोड़ दिया है, और साधुओं के वेश में रहता है। यह अभी तक जीवित है। इसकी रचनाएँ अच्छी होती हैं। आजकल के धनी लोग इससे उदासीन हैं, और यह भी उनकी ओर से उदास है।

"मैंने एक धनी व्यक्ति से कहा कि मैं तुझसे घृणा करता हूँ। उसने कहा–मैं भी तुझसे घृणा करता हूँ। मैंने कहा– यह अच्छी बात है।"

सबाद खाँ ढाडी

यह बहुत अच्छा गायक था। इसकी रचनाएँ सुन्दर हैं। इसका देश फतेहपुर हसुआ था वहीं पर इसका देहावसान हो गया।

किशन खाँ कलावंत

सुल्तान शुजा ने शाहजहाँ बादशाह से इसे माँग लिया था। इसकी

रचनाएँ सुन्दर हैं, बंगाल में इसका देहान्त हुआ। इसे मारग विद्या का भी ज्ञान था ।

सालमचन्द्र डागर

यह बहुत अच्छा गायक था । इसकी रचनाएँ भी सुन्दर हैं। ।

वली ढाडी

यह बहुत अच्छा गायक था । हिजरी सन् ९० में अकबराबाद में इसका देहान्त हो गया ।

शेख सादुल्ला लाहौरी

इसके कई शिष्य हैं और यह अच्छा गायक है । यह आजकल जीवित है और साधुओं की भांति रहता है । अफीम बहुत खाता है । ७० वर्ष से अधिक इसकी आयु है, इसलिए यह अच्छी प्रकार नहीं गा पाता ।

मोहम्मद बारी

यह समाज प्रेमी व्यक्ति है । इसकी रचनाएँ सुन्दर होती हैं । अभी जीवित है । अफीम खाने से इसका स्वर बिगड़ गया है । ५० वर्ष से अधिक इसकी अवस्था है ।

बूचा

यह शेख पीर मुहम्मद का भाई था । यह अच्छा गायक है । इसकी रचनाएँ सुन्दर हैं । मेरे पास भी यह कुछ समय तक रहा है। यह भगन्दर की

बीमारी से ६७ वर्ष की अवस्था में परलोकवासी हुआ।

वाजिद खां

यह अच्छा गायक था। ४०-५० वर्ष के लगभग इसकी मृत्यु हो गई।

शेरा कव्वाल

यह बहुत अच्छा गायक था। ६७ वर्ष की अवस्था में इसकी मृत्यु हो गई।

कबीर कव्वाल

यह शेख मोहम्मद पीर का पट्ट शिष्य है। यह अभी जीवित है। यह साधुओं की सत्संग में रहता है। परमात्मा उसे नैसर्गिक आयु को पहुँचावे।

तुलसी कलावंत

यह धर्म के पाखण्ड से बिलकुल रहित था। यह बहुत अच्छा गायक था। हिजरी सन् ६७ में इसका देहान्त हो गया।

धर्मदास कलावंत

यह भी हिन्दू धर्म के पाखण्ड से रहित था। अधिक आयु हो जाने से इसका स्वर विकृत हो गया। इसने नौकरी छोड़ दी थी और आगरे में बस गया था, जिससे अपना जीवन यापन कर सके।

रहीमदाद ढाढी

यह रचना अच्छी करता था। मार्गी गायन का इसे अच्छा ज्ञान है।

यह शाहजहाँ के वादकों में से था। तानसेन के साथ भी यह पखावजी था। मैंने स्वयं इसे देखा है। यह बहुत वृद्ध हो गया था और पखावज नहीं बजा सकता था। लगभग १०० वर्ष की अवस्था में इसका देहन्त हो गया।

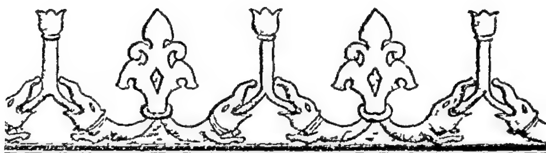
एक आदमी सरना बजानेवाला था, जो ब्याने का रहने वाला था। शाहजहाँ के काल में जीवित था। तरुणावस्था में वह मर गया। मुझे उसका नाम स्मरण नहीं।

एक और अद्वितीय वादक था। यह सोनागिरि का था और शाहजहाँ के छोटे बेटे के साथ रहता था। उसका नाम भी मैं भूल गया।

दूसरे भी गायक और वादक होंगे, किन्तु मैंने नहीं देखे और सुल्तान औरंगजेब के दरबार में नहीं आए। जितने व्यक्ति हमारे शासकों के दरबार में आए और जिनके साथ मैंने संगीत में भाग लिया, उन्हीं का वर्णन मैंने सत्यता से लिख दिया है।

ताल का वर्णन

ताल चोट को कहते हैं। असली शब्द तत्त्व है। इसको विकृत कर दिया है। जिसको रुचि हो, वे प्राचीन पुस्तकों द्वारा इसका अध्ययन कर लें।



आप बीती

हिजरी सन् १०७१ में, बादशाह औरंगजेब, जिनका मैं परम्परागत सेवक हूँ, मुझ से नाराज हो गए। स्वार्थी व्यक्तियों ने, जोकि राज्य के निश्चित दुश्मन होते हैं, मेरे विरुद्ध उनके कान भर दिए। मैं घर बैठने की कई बार प्रार्थना कर चुका था, किन्तु मुझे आज प्राप्त नहीं हुई थी। नौकरी में मुझे परमात्मा का सहारा था। इस कारण मैं नौकरी छोड़कर और सैनिक भेष त्याग कर जीविकोपाजन के हेतु बिना किसी धन संग्रह के परमात्मा के भरोसे पर बैठ रहा। मेरा तो यह लक्ष्य था—"यदि हजरत खिजर भी मार्गदर्शी बन कर आएँ तो भी अपना स्थान मत छोड़ो। अपने प्रेमी की गली में

में से बाहर जाने में शान्ति नहीं है । इसलिए उस स्थान को मत छोड़ो । अपने ही चारों ओर सारी उम्र घूमो । चक्की की भांति अपनी परिधि से अलग मत होओ ।"

मैं आनन्द–मग्न बैठा हुआ था, जैसा कि पुस्तक के आरम्भ में लिखा है। परन्तु हिजरी सन् १०७७ में मेरे लिए बादशाह के सम्मुख हाजिर होने की आज्ञा हुई । मेरे घराने की संस्कृति में बादशाह की आज्ञा न मानना कृतघ्नता थी, मैं आगरे पहुँचा । बादशाह ने अपनी कृपा से मुझे अपना बना लिया । इसी बीच में स्वर्गोपम काश्मीर की यात्रा का बादशाह ने इरादा किया । मुझे भी साथ जाने की आज्ञा हुई । यद्यपि औरंगजेब निजी सेवकों के अतिरिक्त और किसी को साथ नहीं ले जाते थे, किन्तु मुझे अपने साथ लिया । काश्मीर का मार्ग कठिन है । एक फारसी कवि का शेर है "काश्मीर का मार्ग इतना संकीर्ण है जैसे चीनी के बर्तन टूटने पर दरार हो । पथिकों के लिए इस मार्ग पर चलना बाल पर चलने के बराबर है । मैं लाहौर के बादशाह की आज्ञा पाकर पहले काश्मीर पहुँचा । जब बादशाही सेना काश्मीर से दो पड़ाव पर रह गई तब मैं स्वागत के लिए आया । ज्योतिषियों ने मुझे पहले ही सूचित कर दिया था कि अमुक दिन की अमुक घडी को बादशाह से आपकी कृपामयी भेंट होगी । ठीक उसी समय बादशाह ने मुझे बुलाने की आज्ञा प्रदान की । मैं सकुटुम्ब बादशाह से मिला । विजयी की भांति बादशाही सेना नगर में प्रविष्ट हुई । काश्मीर के लिए उर्फी ने यह कहा है "यदि काश्मीर में कोई कबाब की तरह दग्ध और पीडित मनुष्य भी आ

जाय तो पक्षी की भांति उसके पख निकल आएँगे । जब जाडे की ऋतु पास आई, बादशाह सलामत हिन्दुस्थान चले आए, और मुझे काश्मीर का सूबेदार बना दिया । मैं बादशाह सलामत से अलग नही होना चाहता था । लेकिन इस विचार से कि शासन मे बढकर परमात्मा की कोई उपासना नही है, मैंने इसे स्वीकार किया । औरगजेब का भी यही विचार था । किसी भी बाद शाह ने इस विचार से शासन नही किया । बायमजीद और जुनीद (दो फकीर) भी मेरे बादशाह की चाकरी करना ईश्वरोपासना से श्रेष्ठ समझते थे। न जाने आठ घडियों में से कब हमारा बादशाह सोता है, यह अतिशयोक्ति नही है । वह सदा ईश्वर की उपासना में लगा रहता है । वह मुकुट नहीं पहिनना चाहता था और राज सिंहासन से दूर रहना चाहता था । जो समय देश और माल के काम में व्यतीत होता है,उस समय भी हाथ तो कर्मकाण्ड में रहता है और मन ईश्वरोपासना मे । इतने विस्तृत देश के शासन का बोझ होने पर भी ४२ वर्ष की अवस्था में कुरान को कण्ठस्थ करना प्रारम्भ किया और १०६७ हिजरी सन् में अर्थात् ४६ वर्ष की अवस्था में अद्योपात समाप्त कर दी । इसलिए इससे बढकर और शुभ काम कौन सा होगा कि ऐसे धार्मिक सम्राट के दर्शन किया करें। लेकिन आज्ञा के विरुद्ध काम करना इस्लाम धर्म के विरुद्ध होना है । अत मैंने सूबेदारी स्वीकार कर ली । विदाई के समय सरोपा पोशाक मय स्वर्ण आभूषण के मुझे दिया और विदा कर दिया । मैं रोता धोता काश्मीर पहुँचा । काश्मीर का प्रबंध किया और काम को ही आराम समझा ।

मैंने अधिक परिश्रम करना प्रारम्भ कर दिया। दारदू की लड़ाई लड़ी। अभी तक बादशाह की विजय पताका वहाँ न फहराई थी। सिकन्दर भी इस देश को नहीं जीत पाया था। कई स्थानों पर नसैनी लगाकर पहाड़ी पर चढ़ना पड़ा। जिस किसी का पैर काँपा, वह शहीद हो गया। २० दिन तक इस भांति लड़ते लड़ते उस प्रदेश में पहुँचे। जिसने मुकावला किया उसे कत्ल किया। इस्लाम की विजय हुई। तीन हजार स्त्री पुरुषों को मुसलमान बनाया जब जीते। पानी वाली नदी के किनारे सेना ने अपने तम्बू गाढ़े। पानी बहुत तेजी से वहता था। उस नदी की चौड़ाई दो तीर की थी (अर्थात् दो वाण की फेंक थी)। वह गहरी बहुत था। संगयशव की खान इसी नदी के पास है। यह भी काफिरों का गांव है। हमारी सेना ने चाहा कि उस नदी में घड़ियाल की भांति तैरकर उस पार हो जाएँ परन्तु परमात्मा ने ऐसा किया कि उस गाँव के मुखिया हमारे पास आए और मुसलमान हो गए। हमारे यहाँ से मौलवी लोग गए और सबको कलमा पढ़ा दिया। इस काम को करके मैं वहाँ से वापिस आया। मैंने एक सेना को नियुक्त कर दिया कि विद्रोहियों को सजा दे और चित्राल, कासाल, होमियाल, के लोगों को बादशाह की अधीनता में लाएँ। तोपचियों को मैंने नियुक्त किया। और मुरादखां जोकि छोटा जमीदार है, उनका नेता बनाया और आज्ञा दी कि वह गिलगिट को जीते। मुरादखां वहुत तेज आदमी था। उसने इस प्रदेश को अशुद्ध काफिरों से शुद्ध किया। वहाँ का हाकिम भागकर काशगर पहुँचा। ये दो प्रदेश भी औरंगजेव के विजित साम्राज्य में शामिल हो गए। मैं जाड़े की ऋतु में पूरे दो माह काश्मीर रहा, और वहाँ का प्रबंध किया। इसके वाद बादशाह से मिलने

चल पडा। उस समय बर्फ गिर रहा था। कोनल मसऊद का पुल पार करके बादशाह के पास पहुँचा। सरहद के नाके पर मुझे वापिसी की आज्ञा मिली। विदाई के समय खाने का घोन्, सोना पहने हुए और पूग सरोपा मुझे प्रदान किया। मै पुन काश्मीर पहुँचा। काश्मीर के लिए किसी ने ठीक कहा है कि "पृथ्वी पर यदि कही स्वर्ग है, तो वह इन स्थान पर है।, इसी स्थान पर है, इसी स्थान पर है ।" दो मास पुन काश्मीर प्रबध के बदोवस्त में व्यतीत किए। पहाडी सुन्दरियो को देखा। उनकी सौंदर्य-श्री का वर्णन नही किया जा सकता। एक बालिश्त जमीन पर बहुत से रग-बिरगे और सुगधित पुष्प पैदा होते है। मैंने तो अपने जीवन में न एसा स्थान देखा और न सुना। अरब, ईराक, ईरान, खुरोसान, आदि के निवासी भी मेरे कथन का समथन करते है। इतना सबको विश्वास है कि यदि स्वग कही आसमान के ऊपर है तो इसी देश के ऊपर होना चाहिए और यदि पृथ्वी पर है तो यही और यदि पृथ्वी के नीचे है तो इसी प्रदेश के नीचे होना चाहिए। मैं यह चाहता था कि काश्मीर का कुछ वर्णन करूँ, परन्तु विवश हूँ। वहाँ का वर्णन इतना रगीन है कि मेरे हाथ की लेखनी मेंहदी की लाली बनकर रह गई। लेखनी लेखनी नही रही। अगर लेखनी, लेखनी रहती तो सागर में से गागर भर ली जाती। लेखनी जब पर्वतो की कीर्ति का वणन करने लगी तब पगु हो गई। वहाँ की नदियो के लिए इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि अमृत का कुड यही है, जो सिकन्दर को भी प्राप्त न हो सका। फिर मेरी क्या गिनती है। इसलिए काश्मीर के वर्णन से म अपना हाथ रोकता हूँ।

मेरे मित्रों ने, जो गायन विद्या के प्रेमी थे, गायन की पुस्तकें पढ़ीं। किसी को भी पूर्ण न पाया और उन्हें निराशा हुई। मूझसे पुस्तक लिखने के लिए कहा। जब मैंने उन्हें अपनी अज्ञानता बतलाई तब वे समझे कि मैं बहाना करता हूँ इसलिए दो-तीन वर्ष के समय में इस पुस्तक का बहुत सा अंश लिख दिया। मुझे अवकाश नहीं था, मैंने लापरवाही भी की।

फारसी में एक शेर है, जिसका अर्थ है "मैं एक फक्कड़ व्यक्ति हूँ, प्रेम ने मुझे पागलपन प्रदान किया है। प्रेम का न्याय भी अद्भुत है। मेरे बंधन काट दिए है, किन्तु मै कारागार छोड़ना नहीं चाहता। यदि सुन्दरता उसको हो तो लैला सूचित करो कि प्रेम ने मुझे (शायर मकबूली) मजनू का उत्तराधिकारी बनाया है।"

हिजरी सन् १०७६ के जाड़ों में मेरा कहीं बाहर जाना नहीं हुआ। अभी तक मैंने अपने सुल्तान औरंगजेब को यह पुस्तक भेंट नही की, इसलिए इसके आरम्भ में बादशाह की कीर्ति नही वर्णित है। यदि जीवन शेष रहा तो मै बादशाह को उसे अर्पित करने का प्रयत्न करूँगा। अबतक जिन मित्रों के पास 'मान कुतूहल' की प्रतिलिपियाँ है, वे पूर्ण नही है। मेरी पुस्तक पूर्ण है। काश्मीर में गायन बिलकुल नही है। कभी-कभी फारसी के गीत अच्छे वादक बजा लेते है और मै फारसी के गीत पूर्णतया नहीं समझ पाता हूं। अतः हिन्दी रागों की तुलना में जो ईरानी राग मुझे गायकों से प्राप्त हुए है उन्हें लिखता हूँ। अब तक ११ राग हिन्दुस्तान और ईरान के मिलते है। इसके बाद और राग जब मुझे मिलेगे, उन्हें भी लिख दूंगा। इनका वर्णन नीचे किया जाता है--

गिजाल और पट्राग मिलते जुलते हैं। पट्राग रामकली का उल्टा है नैरेज कल्याणसे मिलता जुलता अर्शीरान विदेश के समान है। दरगाह शुद्ध टोडी की तरह है। ईगनी नवाराग सारग से मिलता जुलता है। रास्तराग नट के समान है। ईराक पूर्वी धनाश्री से मिलता है। परदा आजकल की ठुमरी क समान है। शहनाज उसी राग से मिलता है जिसे पजावी गाते हैं।

गायको की वह मडली जो खुरासान, ईराक और जेहूँसेहूँ नदी के दोआव से हिंदुस्तान में आकर वसी थी, उसमें से गीत गाने, वाद्य यत्रो के वजाने, तथा सगीत के सिद्धातो को जानने में जुलिफकारखाँ (जो ईरान के वादशाह शाह अव्वास मफली का पुत्र था) से वढकर कोई देखने में नही आया।

जो कुछ नक्दी और जिन्स मैंने अपने जीवन में कमाया, उसे गायकों की सेवा में व्यय कर दिया। इस पुस्तक के निर्माण में हजारो नही वल्कि लाखो मुद्राएँ व्यय हुई हैं। अभी तक मेरा और अन्य निष्पक्ष व्यक्तियो का विश्वास यही है कि मैंने पत्थर की ठीकरियाँ देकर सजीवनी मोल ली है। परमात्मा को धन्यवाद है कि वह मुझे वहुत सस्ते में मिली। मैं पाठको से यह आशा करता हूँ कि यदि मेरे जीते जी और मेरी मृत्यु के वाद इस पुस्तक को पढने से वे आनंदित हो तो ईश्वर से मेरे लिए स्वर्ग की प्रार्थना करें। एक फारसी कवि का शेर है, जिसका अर्थ है —

"किसी भी वार्ता से मौन रहना श्रेष्ठ है, और किसी भी शास्त्र को पढकर उसकी विस्मृति।"

——समाप्त——

परिशिष्ट

देशों की मणि
अथवा
मध्यकाल का शीराज

ईरान देश में शीराज नगर सांस्कृतिक तीर्थ माना गया है। फारसी के श्रेष्ठतम कवि एवं विचारक शेखसादी और हाफिज को जन्म देने का श्रेय इस नगर को है। जब कोई फारसी और फारस का हिमायती अन्य देश के किसी भूभाग की तुलना शीराज से करे तब यही माना जायगा कि वह उस प्रदेश को उस देश का सांस्कृतिक केन्द्र समझता है, भाषा और साहित्य का मूल स्रोत समझता है।

आलमगीर औरंगजेब के काश्मीर के सूबेदार फकीरुल्ला ने रागदपर्ण नामक एक पुस्तक हिजरी सन १०७३ (ई० १६१६) में फारसी में लिखी थी। पुस्तक संगीत विषयक है और मानसिंह तंवर द्वारा प्रणीत 'मानकुतूहल' का फारसी अनुवाद है। परन्तु अनुवाद के साथ ही फकीरुल्ला ने अनेक प्रसंग अपनी ओर से भी जोड़े हैं। ऐसे ही एक प्रसंग पर वह लिखता है:—

> "सुदेश से तात्पर्य है ग्वालियर, जो आगरा (अकबराबाद) के राज्य का केन्द्र है व जिसके उत्तर में मथुरा तक, पूर्व में उन्नाव तक, दक्षिण में ऊंज तक तथा पश्चिम में बारां तक का प्रदेश है। भारत में इस बीच की भाषा सब से अच्छी समझी जाती है। यह खंड भारत में उसी प्रकार है जिस प्रकार ईरान में शीराज।"

फारसी के इस विद्वान का ग्वालियर से अथवा उस प्रदेश से

जिसकी सीमा उसने 'सुदेश' कही है, कोई लगाव नहीं था। उसके द्वारा यहाँ की भाषा को टकसाली कहना और ग्वालियर को भारत का सांस्कृतिक केन्द्र बतलाना पर्याप्त महत्व रखता है।

फकीरुल्ला के लगभग एक शताब्दी पूर्व महाकवि केशवदास ने इस 'सुदेश' को मध्य देश कह कर उसकी स्तुति की है —

आछे आछे असन, बसन, वसु, बासु, पसु
दान सनमान, मान, बाहन बखानिये।
लोग, भोग, योग, भाग, बाग, राग, रूपयुत
भूषननि भूषित, सुभाषा मुख जानिये।
सातोपुरी, तीरथ, सरित सब गंगादिक
केशोदास परन पुरान गुन गानिये।
गोपाचल ऐसे गढ़, राजा रामसिंह जू से,
देशनि की मणि महि मध्य देश मानिये।

निश्चय ही देशों की मणि, इस मध्य देश को, महाकवि केशवदास भारतीय संस्कृति का केन्द्र मानते हैं। यह मध्य देश है कौनसा? इसमें गोपाचल गढ़ है और राजा रामसिंह का राज भी है। इस प्रकार यह वही भूखंड है जिसे एक शताब्दी बाद फकीरुल्ला ने 'सुदेश' कहा है। केशवदासजी ने 'सुभाषा मुख जानिये' में यहाँ की भाषा की श्रेष्ठता बतला दी है और अन्य विस्तार में वही भाव दर्शाया है, जो फकीरुल्ला ने इसे 'सीराज' लिखकर प्रकट किया। इससे यह भी स्पष्ट है कि ग्वालियर सांस्कृतिक दृष्टि से बुंदेलखंड का ही अंश रहा है। केशवदास के आश्रयदाता बुंदेला राजाओं का इस गढ़ पर कभी अधिकार न रहने के कारण केशव ने इसे राजनीतिक बुन्देलखंड की सीमा में नहीं माना, परन्तु उन्हें लिखना ही पड़ा कि देशों की मणि 'मध्यदेश' वह है जिसमें ग्वालियर गढ़ भी है और

राजा रामसिंह का राज्य भी। इसी, भूखंड की भाषा, वेश-भूषा, रहन-सहन आदि की उन्होंने प्रसंशा की है। दूसरे शब्दों मे उसे एक ही सांस्कृतिक इकाई माना है।

हम पूर्व मे यह स्थापना कर चुके हैं कि मुगल संस्कृति में जो भी भारतीय अंश है उसका मूल उद्गम ग्वालियर है और इसी तत्व से प्रभावित होकर फकीरुल्ला ने अपना उक्त विचार प्रकट किया। महाकवि केशवदास इस प्रदेश के अधिक निकट थे, वे इसके महत्व को समझ सकते थे। अतः जब उनके द्वारा ग्वालियर को यह गौरव दिया गया तब उसके और भी ठोस आधार होना चाहिये। केशवदास के समय तक हिन्दी-साहित्य अपने स्वर्णयुग में पदार्पण कर चुका था और फकीरुल्ला के समय तक तो कृष्ण और रामभक्ति के श्रेष्ठतम काव्य जनता में प्रचार पा चुके थे। फिर क्यों ग्वालियर को यह सम्मान दिया गया? इसका उत्तर यही है कि फकीरुल्ला अथवा केशवदास के बहुत पूर्व से ही यह स्थान साहित्य-संगीत आदि का प्रधान केन्द्र रहा है।

हिन्दी भाषा और साहित्य के इतिहास पर सूक्ष्म दृष्टिपात करने पर यह ज्ञात होता है कि चारण काल की डिंगल प्रधान रचनाओं और भक्तिकाल की पुष्ट रचनाओं के बीच तारतम्य स्थापित करने वाली कड़ी का उसमें अभाव है। किसी भी ऐसे केन्द्र के दर्शन उस समय नहीं होते जहां की भाषा को माध्यम मानकर अधिकाधिक जनसमूह के मनोभावों को प्रकाशन मिलना प्रारंभ हुआ हो। हम यहां भाषा शब्द का प्रयोग बोली के अर्थ मे करेंगे और इस प्रकार यह प्रकट होगा कि विद्यापति के पदों की भाषा पश्चिम में प्रचार नहीं पा सकी और मीराकी पूर्व मे। संतों की अटपटी बाणी कहाँ पर परिमार्जित होकर केशव, तुलसी और सूर के काव्यों की शालीन भाषा बनी यह प्रश्न विचारणीय है। यह संभव नहीं कि यह कार्य

एकाएक हो गया हो। इस प्रश्न के उत्तर में ही ग्वालियर का महत्व निहित है।

उस समय काव्य का संगीत से घनिष्ट सम्बन्ध था। रासो गेय काव्य थे, संतों के पद गाने के लिये लिखे जाते थे, सूफी मतों की रचनायें जनता को गायकों द्वारा गाकर सुनाई जाती थीं, ब्रज का पद साहित्य संगीत को आधार मानकर चला है। उस समय संगीत के पद भाषा का निर्माण और परिमार्जन कर रहे थे, पद-लेखक की प्रतिभा के अनुसार साहित्य का सृजन हो रहा था।

पन्द्रहवीं शताब्दी में ग्वालियर में संगीत अपने पूर्ण विकास पर था। यह परम्परा चौदहवीं शताब्दी से चली होगी और मानसिंह तँवर के राज्यकाल में वह अपनी चरम सीमा पर पहुँची। उस समय के प्रामाणिक संगीत ग्रंथ मानकुतूहल के अनुसार संगीत शास्त्री को पद रचना में दक्ष होना चाहिये। फकीरुल्ला के मत के अनुसार स्वयं मानसिंह ने प्रचुर पद रचना की। उनके दरबार में अनेक नायक (संगीताचार्य) थे, जो पद रचना करते थे। पदों का यह संग्रह अभी तक प्राप्त नहीं हो सका है। उस टकसाल में गढ़ी जाने वाली भाषा उस समय जौनपुर, माड़ू, दिल्ली, मेवाड़ और गुजरात तक में प्रचलित हो गई थी क्योंकि वहां भी संगीत के केन्द्र बने और संगीत की स्वरलहरी शब्दों के आधार पर ही आगे बढ़ती है।

तँवरों के ग्वालियर ने उस समय अपने आपको सांस्कृतिक नेतृत्व का अधिकारी भी बना लिया था। देश के प्रसिद्ध विद्वानों को तँवरों के दरबार में आश्रय मिला हुआ था। केशवदास के कम से कम चार पूर्वजों का तँवर राज-सभा से सम्बन्ध रहा है। उनका आदर ग्वालियर की राज सभा में केवल इस कारण था कि वे उद्भट विद्वान थे, जिन गोपालगढ़ दुर्गपति ने त्रिविक्रममिश्र के पैर पूजे वे संभवतः कीर्तिसिंह तँवर होंगे। राजाओं की पीढ़ियों से पंडितों की पीढ़ियां यदि अधिक दीर्घ जीवी होंगी तब त्रिविक्रम

मिश्र महाराज डूगरेन्द्रसिंह द्वारा भी सम्मादृत माने जा सकते हैं। इतना तो निश्चित है कि त्रिविक्रम मिश्र के पौत्र षटदर्शनों के अवतार शिरोमणि मिश्र तथा उनके संतोषी पुत्र हरिनाथ महाराज मानसिंह के समकालीन थे।

केशवदास ने कविप्रिया में अपने पूर्वजों का वर्णन करते हुए लिखा है:—

भये त्रिविक्रम मिश्र तब तिनके पंडित राय,
गोपाचलगढ़ दुर्ग पति, तिनके पूजे पाय।
भाव शर्म तिनके भये, जिनकै बुद्धि अपार,
भये शिरोमणि मिश्र तब षटदर्शन अवतार।
मानसिंह सों रोष करि जिन जीती दिसिचार,
ग्राम वीस तिनको दये राना पांव पखारि।
तिनके पुत्र प्रसिद्ध जग, कीन्हे हरि हरिनाथ,
तोमरपति तजि और सों भूलि न ओड्यो हाथ।

महाराज मानसिंह से झगड़कर शिरोमणि तो चले गये और उन्होंने किसी 'राना' से वीस गांव भी दान में ले लिये, परन्तु तँवर महाराज की उदारता में कमी न आई। दंभी एवं लोभी पंडित के पुत्र को उनकी उदारता का सहारा मिलता ही रहा, हरिनाथ ने तो दूसरे के सामने हाथ न पसारा और न पसारने की आवश्यकता हुई।

तंवरों के राज्य-सूर्य के अस्त होते ही यह प्रसिद्ध मिश्र परिवार भी ग्वालियर छोड़ गया और इसने बुन्देलों की राज सभा में आश्रय पाया हरिनाथ के पुत्र कृष्णदत्त को बुन्देला राजा रुद्र ने आश्रय दिया और वे ओरछा नगर में जा बसे। इन कृष्णदत्त मिश्र की तीसरी पीढ़ी में महाकवि केशवदास हुए। यद्यपि अपने आश्रयदाता बुन्देला नरेश की विजयगाथा लिखते समय इन्होंने अगले तंवरों के पराभव

का वर्णन करते हुए विज्ञान गीता में लिखा है कि महाराज वीर-सिंह ने —

> "जौन ज्यों पुन पवार पुवार ते तोवर तूल के तूल उडाये,
> सिंह ज्यों बाघ ज्यों कच्छप ग्राहु हने गज ज्यों मृगराज डहाये।

उनके आश्रयदाता बुन्देला ने तवरों को तूल के तुल्य उड़ा दिया, यह केशवदास ने केवल अपने आश्रय दाता के गुणगान में ही लिखा है, उनकी तवरों के प्रति श्रद्धा और ग्वालियर के प्रति लगाव की कमी नहीं हुई। 'जहांगीर जस चन्द्रिका' में उनके पूर्वजों के आश्रय-दाता तवरों के वंशज श्यामसिंह का परिचय देते हुए 'प्रश्नोत्तर के रूप में केशव ने लिखा है —

> उर विशाल आजानु भुज, मुद्रिनि मुद्रित भाल।
> ममसजीन मिरजा निकट, कहौ कौन नरपाल ॥६३॥

o o o o

> तवर तमाम को तिलक मानसिंह जू को,
> कुल को कलश वंश पंडव प्रबल को।
> जूझ में बून परं मुझनी ज्यों देवन को,
> किधौं हलधर के धरन हलाल को।
> जालिम जुझार जहांगीर जू को सावत,
> कहावत कैसोराय स्वामी हिन्दू दल को।
> राजनि की मण्डली को रंजन विराजमान,
> जानियत श्यामसिंह सिंह गोपाचल को॥

गोपाचल का सिंह श्यामसिंह तवर यद्यपि आज सम्राट जहांगीर की राज सभा का सामन्त मात्र रह गया था परन्तु वहां भी वह हिन्दू

दल का स्वामी था। इस गोपाचल से लेकर राजा रामसिंह बुन्देला तक के प्रदेश को केशवदास ने "देशों की मणि" मध्यदेश कहा है और उसकी भूरि भूरि प्रसंशा की है।

मिश्रों के इस प्रसिद्ध परिवार के अतिरिक्त महाराज मानसिंह द्वारा एक और विद्वान परिवार को प्रश्रय देने का प्रमाण उपलब्ध हुआ है। उस समय मथुरा भी विद्वत्ता का केन्द्र समझा जाता था और माथुर चौबे अपनी प्रतिभा के लिये प्रसिद्ध थे। उनमें विजयराम नामक एक प्रसिद्ध विद्वान को महाराज मानसिंह ने अपने दरबार में आदर के साथ स्थान दिया। विजयराम के पुत्र खड्गमणि राजा के मंत्री बने और तँवरों की ओर से युद्ध करते हुए नरवर में उन्हें वीर-गति प्राप्त हुई। इन्हीं खड्गमणि के सातवें पुत्र गोविन्ददास थे जो अपने पिता और प्रपिता के साथ ग्वालियर में रहते थे। तँवरों के पराभव के पश्चात वे इटावा चले गए और वहां बस गए। अपने वैष्णवग्रंथ "प्रपत्तिवैभव" में उन्हों ने माथुर ब्राह्मणों की प्रशस्ति के साथ ही महाराज मानसिंह तथा अपने पिता और प्रपिता का वर्णन किया है, साथ ही ग्वालियर का भी बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। वे लिखते हैं:—

अनाचार आचार यत। साधु असाधहु होई॥
अज्ञानी ज्ञानी सुभुवि। मम तनु माथुर जोई॥ १०॥
यह लखि लाए मान नृप। मथुरा ते करि प्रीति॥
दियो वासु गिरिउपरि लखि। वेद सुमृत ऋषि नीति॥ ११॥
वर्षा ऋतु झरना विविध। नृत्यत मत्त मयूर॥
विगत पंक रह भूमि जहँ। स्वच्छ शिला वहु दूर॥ १२॥
राजन वापी कूप बहु। उपवन शुभ आराम॥
मन्दिर सुन्दर नृप सदृश। षटऋतु के विश्राम॥ १३॥

श्री कल्याणाकर पुत्र पुनि। श्रीमन कंठ सुवेश ॥
तिन सुत गोवर्धन विदित। पुनि कुल मन विप्रेश ॥ १४ ॥
विजयराम सुत मगमनि। उत्तम नाम प्रकाश ॥
तिह सुत नाम प्रसिद्ध श्री। वैष्णव गोविन्ददास ॥ १५ ॥
हरि प्रपत्ति वैभव मुनिन्ह। वैष्णव धर्म प्रकाश ॥
निश्च्यो आत्म स्वधन लखि। वेद सुमृत इतिहास ॥ १६ ॥
प्रकृति पुरुष दोउ पर अपर। कही विष्णु की देह ॥
जाने वैष्णव धर्म तिनु। नहीं अन्य नर एह ॥ १७ ॥
रस मिथुन वसु चन्द्र बुध। शुक्र सप्तमी लेष ॥
श्रावण रवि पूरण भई। गत नक्षत्र विशेष ॥ १८ ॥
तुर्य तुर्ग वसु चन्द्र कवि। कुम्भगण तमपक्ष ॥
अनुराधा निधि सप्तमी। जन्म नाम मुनि स्वच्छ ॥ १९ ॥
॥ इति श्री प्रपत्ति वैभव सम्पूर्णम् ॥

तात्पर्य यह कि तँवरों ने ग्वालियर को विद्वानों का केन्द्र बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया और इन्हें अपनी राजसभा में समादृत किया।

तँवर राजाओं ने जैन धर्म को भी प्रोत्साहित किया। महाराजा डूंगरेन्द्रसिंह और कीर्तिसिंह देव जैन मतावलम्बी थे यह नहीं कहा जा सकता, परन्तु जैनों के प्रति उनकी नीति उदार एवं अत्यंत सहानुभूति पूर्ण थी इसमें संदेह नहीं। संपूर्ण ग्वालियर गढ़ को उनकी अनुमति से ही एक विशाल जैन मंदिर का रूप मिला। अनेक जैन साधु एवं विद्वान इन आयोजनों के सम्बन्ध में ग्वालियर गढ़ पर आते रहे होंगे और तँवर राजाओं की राजसभा में भी उनको आदर मिलता रहा होगा। उनके साथ विचार विनिमय एवं वादविवाद भी होते रहे होंगे। तात्पर्य

यह कि जैन विद्वानों और आचार्यों के सम्पर्क से भी ग्वालियर को सांस्कृतिक केन्द्र बनाने में सहायता मिली।

इस प्रकार चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी में ग्वालियरी भाषा द्वारा भारत के एक बहुत बड़े भाग मे विचारों का आदान प्रदान हुआ। दार्शनिक वादविवादों मे, संगीत में, पदों में एव कवियों की रचनाओं मे उस हिन्दी की प्रतिष्ठा प्रारम्भ हुई जो मथुरा से ओरछा तक, जौनपुर से मेवाड़ और गुजरात तक टकसाली मानी गई और आगे जिसमे केशवदास, सूरदास, तुलसीदास एव बिहारीलाल आदि के काव्य लिखे गये, मुगल दरबार के हिन्दी कवियों ने जिसमें अपनी रचना चातुरी दिखाई और जो हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में एक श्रेष्ठतम स्थिति की प्रतीक है।

संगीत के इतिहास पर दृष्टि डालने से ज्ञात होगा कि मुसलमानों के आक्रमण के पश्चात भारतीय संगीत मे एक क्रान्ति हुई। भारत का संगीत अत्यंत प्राचीन है, उतना ही प्राचीन जितनी भारतीय संस्कृति।

परन्तु जिस प्रकार महाराज हर्षवर्धन के पश्चात संस्कृत भाषा जनसाधारण से हटकर उसके स्थान पर अपभ्रंश एवं अन्य प्रांतीय भाषाओं का प्रचार हुआ, उसी प्रकार संगीत के क्षेत्र मे भी मौलिक परिवर्तन हुए।

तेरहवीं शताब्दी में दिल्ली के सुलतानों के राजदरबार से एक अत्यंत प्रतिभाशाली व्यक्ति का सम्बन्ध हुआ। अबुलहसन जिन्हे हम अमीर खुसरो के नाम से जानते है अरबी और फारसी के विद्वान तथा लेखक थे, साथ ही वे भारतीय और ईरानी संगीत के भी जानकार थे। उनके द्वारा भारतीय और ईरानी संगीत के मिश्रण का कार्य प्रारम्भ हुआ। भारतीय संगीत अपनी प्राचीन परम्पराओं में चलकर भी समाज की नवीन आवश्यकताओं के अनुसार नवीन मार्गों की भी खोज करना

चाहता था। अमीर खुसरो द्वारा यह कार्य सम्भव नहीं था, क्योंकि उनका बतलाया मार्ग सब सम्मत रूप से ग्रहण नहीं हो सकता था।

यह क्रान्तिकारी कार्य महाराज मानसिंह तवर ने किया। उन्होंने एक ओर तो उत्तर भारत के प्रसिद्ध गायकों को एकत्रित कर प्राचीन संगीत के प्रचलित संगीत शास्त्र के सिद्धांत, रागों की संख्या प्रकार आदि व्याख्या एवं विस्तार सहित मानकुतूहल में लिपिबद्ध कराए, दूसरी ओर उन्होंने संगीत को शास्त्रीय रूढ़ियों से मुक्तकर नवीन रागों की कल्पना की। लोकरुचि और लोक भावना के अनुरूप संगीत में परिवर्तन हुआ संगीत के बोल संस्कृत के बजाय हिंदी में बने और 'ध्रुपद जैसे नवीन रागों की प्रतिष्ठा हुई। मार्गी संगीत के स्थान पर ध्रुपद प्रणाली का प्रारम्भ ग्वालियर में हुआ। इसके लिये फकीरुल्ला से अधिक प्रामाणिक साक्षी नहीं मिल सकता। वह लिखता है —

> 'मार्गी भारत में तब तक प्रचलित रहा, जब तक कि ध्रुपद का जन्म नहीं हुआ था। कहते हैं कि राजा मानसिंह ने उसे पहले पहल गाया था जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है। इसमें चार पंक्तियां होती हैं और सभी रसों में बांधा जाता है। नायक बख्शू, नायक बख्शू और सिंह जैसा नाद करने वाला महमूद तथा नायक कर्ण ने ध्रुपद को इस प्रकार गाया कि पुराने गीत फीके पड़ गए। इसके दो कारण थे। पहला यह कि ध्रुपद देशी भाषा में देशवासी गीत था तथा मार्गी में संस्कृत थी, इसलिये मार्गी पीछे हट गया और ध्रुपद आगे बढ़ गया। दूसरा कारण यह था कि मार्गी एक शुद्ध राग था और ध्रुपद में सब रागों का थोड़ा थोड़ा लिया गया है।

तत्कालीन संगीत शास्त्रियों में ध्रुपद के आविष्कार के विषय में क्या

समझा जाता था इसके लिये भी फकीरुल्ला के वचन ही यहां उद्धृत किए जाते हैं:—

"मानसिंह के इस अदभुत आविष्कार के लिये गायन शास्त्र सदा उनका आभारी रहेगा। आज लगभग दो सौ वर्ष हो चुके हैं। कदाचित आगे चलकर कोई गायक राजा मानसिंह के समान गायन शास्त्र में प्रवीण हो तो परमात्मा की अपार लीला से ध्रुपद जैसे अन्य गीत की रचना कर सके। परन्तु अभी तो यही विचार आता है कि ऐसा होना असंभव है।"

यही कारण है कि यद्यपि रागों का हेलमेल कर के जौनपुर के सुल्तान हुसैन शर्की तथा गुजरात के सुल्तान के दरबार में भी कुछ नवीन रागों की कल्पना की जा रही थी, परन्तु जो स्थायित्व मानसिंह एवं ग्वालियर की परंपरा को मिला वह किसी को नहीं मिल सका। ग्वालियर का संगीत उस समय अपने विकास की चरम सीमा पर था। मुगल सम्राटों के दरबार में जो भी श्रेष्ठ गायक थे उनमें से अधिकांश या तो ग्वालियर के थे अथवा उनके शिष्य थे।

सांस्कृतिक विकास के दूसरे प्रतीक संगीत में ग्वालियर उस समय नेतृत्व कर रहा था, और इसी कारण महाकवि केशव तथा फकीरुल्ला ने इस प्रदेश की अभ्यर्थना की थी।

'दृश्य संगीत' शीर्षक अपने एक लेख में हमने यह विचार प्रकट किया था कि रागमाला चित्रों का निर्माण सर्व प्रथम बुन्देल खंड में हुआ था।*

मुगलों के समय में संगीत की अत्यधिक उन्नति हुई और संगीतज्ञ उस समय समादृत भी हुआ। सम्राट अकबर संगीत सम्राट तानसेन के

* हमारी पुस्तक 'मध्यकालीन कला' देखिए।

आश्रयदाता के रूप में विख्यात हैं। यह तानसेन मानसिंह के दरबार के गायकों की परम्परा में थे। तानसेन के गायन की प्रशंसा में कवि ने लिखा —

विधना यह जिय जानि कै
शेषहि दिए न कान
धरा मेरु सब डोलतो
तानसेन की तान।

और अनेक किंवदन्तियों में तानसेन की स्वरलहरी के सम्मोहक प्रभाव को स्थाई बना दिया गया है। मुगल दरबार में निसृत वह स्वर-लहरी तिरोहित हो गई, परन्तु उसका प्रभाव इन कथा कहानियों ने अमिट कर दिया।

परन्तु फकीरुल्ला जानता था कि सम्राट अकबर अथवा उनके बाद मुगल सम्राटों के दरबार में संगीत का जो विकास हुआ वह पन्द्रहवीं शताब्दी के ग्वालियरी संगीत की छाया मात्र था। उसकी तडक-भडक बढी, परन्तु शास्त्रीयता एवं लोक प्रियता कम हुई। इसके लिये हम फकीरुल्ला का कथन उद्धृत करना उचित समझते हैं —

"संगीत रसिकों को ज्ञात होना चाहिये कि 'रागसागर' स्वर्गवासी सुल्तान (अकबर) के समय में रचा गया है, उसमें बहुत राग 'मानकुतूहल' के विपरीत लिखे गए हैं। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि 'मानकुतूहल' और 'राग सागर' के काल में बहुत अंतर है। उस समय संगीताचार्य थे, परन्तु अकबर के काल में कोई भी गायक संगीत शास्त्र के सिद्धान्तों के ज्ञान में राजा मान के काल के गायकों को नहीं पाता। सम्राट अकबर के समय में बहुधा अताई व्यक्ति थे, जिन्हें संगीत का व्यावहारिक ज्ञान तो था, किन्तु वे गायन के सिद्धान्त से परिचित न थे।

मियां तानसेन, खुमान खाँ फतहपुरी, चाँद खाँ......आदि सभी असाई श्रेणी में आते हैं। बाज बहादुर जो मालवे का नबाब था, नायक चूचू...…आदि किसी न किसी मात्रा में संगीत के सिद्धान्तों से परिचित थे, परन्तु फिर भी नायक भत्तू, नायक पाण्डे और बक्षू की भांति संगीत शास्त्र के आचार्य नहीं थे।" अंत में वह लिखता है "इसी बात को विचार में रखते हुए मैंने 'राग सागर' की बात को ग्रहण नहीं किया और 'मानकुतूहल' का अनुवाद कर दिया है।"

औरंगजेब के समय तक मुगल दरबार के प्रधान गायकों और वादकों में अधिकांश ग्वालियर से आते रहे। तात्पर्य यह है कि संगीत के क्षेत्र में निःसंदेह रूप से चौदहवीं शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी तक ग्वालियर का प्रमुख स्थान रहा। अतएव यह संगीत परंपरा तो आज भी चली आ रही है, वह विकासोन्मुख है, ऐसा कहना कठिन है। इसमे संदेह नहीं कि मुगल भारत के पास संगीत के क्षेत्र में जो कुछ श्रेष्ठ और भारतीय था वह गवालियर की देन थी।

मध्यकाल में जिस प्रकार संगीत और काव्य एक दूसरे से सम्बन्धित थे उसी प्रकार चित्रकला भी कभी काव्य से और कभी संगीत से सम्बन्धित दिखाई देती है। यहां तक कि रागमाला चित्रों में तो हमें इन तीनों कलाओं के अत्यंत कल्पनामय समन्वय के दर्शन होते है। चित्रकारों ने अपने चित्रों के विषय धार्मिक आख्यानों से लिये जो काव्य के भी विषय थे। इस प्रकार उनमे निकटता स्थापित हुई। नायिका भेद, षटऋतु आदि काव्य और चित्र दोनों के विषय बने। कवि ने चित्रकार को चुनौती दी:—

"लिखन बैठि जाकी सबिहि,
गहि गहि गरब गरूर।

भए न केते जगत के,
चतुर चितेरे कूर।।

नायिका के सौन्दर्य को चितेरा पट पर न बांध सका, परन्तु कवि भी उसकी व्यंजना मात्र कर सका।

विषय साम्य के आगे भी जो बात दिखाई दी वह यह थी कि कुछ चित्रकारों ने कवियों की रचनाओं के आधार पर चित्र रचना की। षट्ऋतु, बारह मासा, नायिका भेद आदि विषयों पर लिखी गई कविताओं के आधार पर चित्रकारों ने चित्रों की रचना की।

१५ वीं अथवा १६ वीं शताब्दी में प्राप्त चित्र भारतीय चित्रकला के पुनरुत्थान के द्योतक हैं। इसके पूर्व जो चित्र प्राप्त होते हैं और जिन्हें श्री रायकृष्णदास अपभ्रंश शैली का कहते हैं "केवल उस ह्रास की पूर्णता के द्योतक हैं जिसका आरंभ पूर्व मध्य काल में केरल में हो चुका था"। इस ह्रासोन्मुख चित्रकला को विकासोन्मुख कहा किया गया?

राय कृष्णदास ने अपनी पुस्तक 'भारत की चित्रकला' में इस विषय में लिखा है।

'यह पुनरुत्थान गुजरात और दक्षिणी राजस्थान मेवाड़ में हुआ जान पड़ता है। आरम्भिक राजस्थानी चित्रों में अंकित वस्तु १५ वीं शती के गुजरात का है। अकबर के समय में गुजरात, अन्य कलाओं के साथ साथ चित्रकला का एक मुख्य केन्द्र था।"

परन्तु हमारा इस स्थापना से मतभेद है। वास्तव में इस पुनरुत्थान का केन्द्र ग्वालियर तथा उसके आस पास का प्रदेश अथवा बुन्देलखंड था।

रागमाला चित्रों में से एक अत्यंत सुंदर चित्र हमने भारत विभाजन के पूर्व लाहौर कालेज के प्रिंसिपल श्री डिक्सन के पास देखा

था। अब वह चित्र प्रिंस ऑफ वेल्स म्युजियम बम्बई में है। यह चित्र सोरठ रागिनी का है और इसके पृष्ठ भाग पर लिखा हुआ है "संवत १७३७ वर्षे ज्येष्ठ मासे सुक्ल पक्षे एकादशी शुक्रवार को पोथी लिखित चित्र माधोदास नरस्यंग सहर जदि के स्थित।"

अर्थात यह चित्र संवत १७३७ अर्थात सन १६८० ईसवी में नरसिंह शहर के निवासी माधवदास द्वारा बनाया गया।

नरसिंह शहर, हमारे मत में दतिया का नाम है। मुसलमान इतिहास लेखक महाराज वीरसिंह जू देव बुन्देला को नरसिंह के नाम से संबोधित करते हैं और उनका यह शहर नरसिंह शहर है। यह चित्र वास्तव में बुन्देलखंड की ही कृति है। इस चित्र को देखने से स्पष्ट होता है कि यह एक दो शताब्दी से चली आ रही चित्रकला का उदाहरण है। इस क्षेत्र में चौदहवीं एवं पन्द्रहवीं शताब्दी के अनेक चित्र प्राप्त हुए हैं जिनमें से एक भारत कला भवन को हमने दिया है। इसके पृष्ठ भाग पर केशवदास के कवित्त लिखे हुये हैं। अतएव इन प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है भारतीय चित्रकला का १५ वीं एवं १६ वीं शताब्दी में जो पुनरुत्थान हुआ उसका केन्द्र स्थान ग्वालियर एवं बुन्देलखन्ड था।

परन्तु अभी इस दिशा में बहुत खोज होना शेष है और बहुत सी सामग्री सामने आना है। जो कुछ अभी तक हमें प्राप्त हुआ है उसके आधार पर यह लेख लिखा गया है और वह हमारे मत में तो इस स्थापना की पुष्टि के लिये पर्याप्त है कि मध्य कालीन भारतीय सांस्कृतिक विकास का केन्द्र, भारत का यह 'शीराज', देशों का मणि, मध्यभारत का यह भूभाग था।
